मुल्ला वजही

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप मे राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमे तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे है, जिसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है । भारत में लेखन-कला का सभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख ।

नागार्जुनकोण्डा : दूसरी सदी ईसवी
सौजन्य : राष्ट्रीय सग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

मुल्ला वजही

लेखक

जावेद वशिष्ठ

अनुवादक

जानकीप्रसाद शर्मा

साहित्य अकादेमी

Mulla Wazhi: Hindi translation by Janaki Prasad Sharma of Javed Vashisht's monograph in Urdu. Sahitya Akademi, New Delhi (1992),
SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15 00

प्रथम संस्करण १९९२

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, ३५ फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली ११० ००१

विक्रय विभाग : 'स्वाति' मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली ११० ००१

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवनतारा बिल्डिंग, २३ ए/४४ एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता ७०० ०५३
१७२, मुम्बई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई ४०० ०१४
३०४-३०५, अन्ना सलाई, तेनामपेठ, मद्रास ६०० ०१८
१०९, जे. सी. मार्ग, बंगलौर ५६० ००२

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 1500

ISBN 81-7201-174-1

मुद्रण : लेज़र सैटिंग : मैरिट आर्ट्स, नयी दिल्ली ११० ०२८
मुद्रक : संजय प्रिंटर्स, दिल्ली ११० ०३२

क्रम

गोलकुंडा का 'दकन नूर' हीरा

मुल्ला वजही 'दमिश्की तलवारो और हीरों के नगर' गोलकुंडा का तराशा हुआ महान 'दकन नूर हीरा' था। जो सत्रहवीं शताब्दी ईसवी में तेलंगाना के ताज में जगमगाता था। इस हीरे की आभा और कांति ने गोलकुंडा की कुतबशाही संस्कृति को आलोकित किया।

इस बहुमूल्य रत्न को तराशने में विजयनगर और बहमनी सुल्तानों के प्रयासो की ऐतिहासिक और बुनियादी भूमिका है। मुल्ला वजही के रचनाकार-व्यक्तित्व के निर्माण की शुरूआत बहमनी युग से ही हो गयी थी।

विजयनगर की सल्तनत १३३६ ई. में और बहमनी सल्तनत १३४५ ई. मे स्थापित हुई। बहमनी सल्तनत के पतन के बाद अहमदनगर में 'निज़ामशाही', बीजापुर में 'आदिलशाही', बरार में 'अमादशाही', मुहम्मदाबाद बिदर मे 'बरीदशाही' और गोलकुंडा मे 'कुतबशाही'– पाँच सल्तनते कायम हुई। इस तरह दकन संस्कृति के पाँच रूप हो गये। इन पर बहमनी संस्कृति का प्रभाव था। लेकिन आपसी झगड़ों और गृह-युद्धों के कारण पहले बरार गया, फिर बिदर और अंततः अहमदनगर। अतएव सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ में सिर्फ़ दो सल्तनते ऐसी रह गयीं थीं जिनमें कुछ अवधि तक दकन संस्कृति का रंग निखरता रहा। ये बीजापुर और गोलकुंडा की सल्तनतें थीं।

सुल्तान कुली कुतबुल्मलिक उर्फ़ 'बड़े मलिक' बहमनी सल्तनत के तेलंगाना के प्रशासक (गवर्नर) ने कुतबशाही खानदान की बुनियाद रखी। वह हम्दान ईरान का निवासी था। उसने मुहम्मदशाह बहमनी की मृत्यु (१५१८ ई.) के बाद अपने स्वाधीन शासन की घोषणा की और गोलकुंडा को अहमदनगर नाम देकर अपना शासन-केंद्र बनाया। जो दमिश्की तलवारों और हीरों के नगर की हैसियत से विश्वविख्यात था। ३ अगस्त, १५४३ ई. को नब्बे वर्ष की आयु में सुल्तान कुली की हत्या कर दी गयी। उसने कभी बादशाहदत की घोषणा नहीं की। सुल्तान उसके नाम का अंग था।

यार कुली जमशेद (१५४३ से १५५० ई.) उस साजिश में शामिल था जिसमें उसने अपने पिता सुल्तान कुली को कत्ल कराया, ऐसा संदेह किया जाता है। यार कुली जमशेद ने अपने भाइयों को ठिकाने लगाना शुरू किया। उसका छोटा भाई इब्राहीम बेदर चला गया और वहाँ से भागकर विजयनगर मे शरण ली। वह वहाँ के राजा का सात वर्ष तक अतिथि रहा।

जमशेद ने भी अपने पिता की तरह बादशाहत की घोषणा नहीं की। फिर भी बुरहान निज़ाम शाह (अहमदनगर) ने उसे ताज और छत्र पेश किया लेकिन जमशेद ने अस्वीकार कर दिया। जमशेद की क़ब्र पर कोई तख्ती नहीं। उसका कोई सिक्का नहीं मिलता।

बिदर के अली बरीद से निरंतर संघर्ष रहा कि उसने इब्राहीम को क्यों शरण दी? अंत में निर्णायक युद्ध हुआ। उसमें जमशेद की विजय हुई और अली बरीद पराजित हुआ। जमशेद दकन का शक्तिशाली शासक बन गया। आखिर २२ जनवरी, १५५० को कैंसर से उसका निधन हो गया। वह फ़ारसी का शायर था।

सुबहान कुली (१५५० ई.) बच्चा ही था। मुस्तफ़ा खां और ऐनुल्मुल्क में प्रधानमंत्री पद को लेकर संघर्ष शुरू हो गया। जगदेव राव सरदार, जमशेद के भाई दौलत कुली को तख्त पर बिठाना चाहता था। लेकिन स्वयं दौलत कुली, इब्राहीम को तख्त पर बिठाने का इच्छुक था। दौलत को भवनगीर के क़िले में नज़रबंद कर दिया गया। जगदेव राव उसे रिहा कराने के सिलसिले में गिरफ़्तार हुआ और उसी क़िले में कैद कर दिया गया।

२७ जुलाई, १५५० ई. को इब्राहीम कुतबशाह गोलकुंडा के किले में विजेता की हैसियत से दाखिल हुआ। इब्राहीम कुतबशाह (१५५० से १५८० ई.) सबसे पहला कुतबशाही शासक कहलाया। उसके सिक्के भी मिलते हैं। दूसरे दकनी सुल्तानों को साथ मिलाकर विजयनगर की सल्तनत को ख़त्म किया। भगीरथी से विवाह किया। तेलुगु का संरक्षण किया। हिंदू उमराव को बड़े पद देकर हिंदू-मुस्लिम एकता को सुदृढ़ बनाया।

'पुराना पुल' १५७८ में मूसी नदी पर बनवाया। हुसैनसागर का निर्माण कराया और सोलह मील के अंतर पर सागर (मस्नूई झील) बनवाया। दोनों जलाशय आज भी पानी पीने के काम आते हैं।

कुतबशाही, आदिलशाही और निज़ामशाही सल्तनतों में आपसी झड़प होती रहती थी। विजयनगर का रामराज बहुत घमंडी राजा था। जब उसने क़ुरान और मस्जिदों का अपमान किया तो उसके विरुद्ध हुसैन निज़ामशाह, अली आदिल शाह, अली बरीदशाह और इब्राहीम कुतबशाह ने मिलकर एक संयुक्त मोर्चा बनाया। 'बनीहटी' के स्थान पर २३ जनवरी, १५६५ ई. को निर्णायक युद्ध हुआ जिसमें रामराज मारा गया। इन चार सल्तनतों की एकता इस युद्ध के बाद टूट गयी। ५ जून, १५८० को इब्राहीम कुतबशाह का देहांत हो गया।

मुहम्मद कुली कुतबशाह पंद्रह वर्ष की अवस्था में ५ जून, १५८० को तख्त पर बैठा। वह अपने पिता का सबसे बड़ा लड़का नहीं था। उसकी जन्मतिथि शुक्रवार, ४

अप्रैल १५६६ ई. है। मीरशाह मीर की लड़की से उसका विवाह हुआ। १५९९ में हैदराबाद के निर्माण की योजना तैयार हुई। १५९२ में 'चार मीनार' का काम पूरा हुआ।

मुहम्मद नसीरुद्दीन हाशमी के अनुसार सुल्तान मुहम्मद कुलीश विस्तृत शासनकाल सभ्यता और संस्कृति के विकास की दृष्टि से एक 'स्वर्णयुग' कहा जा सकता है। इब्राहीम कुतबशाह के युग में जिस दकनी संस्कृति का आरंभ हुआ, वह मुहम्मद कुली के शासनकाल में चरमोत्कर्ष पर पहुँच गयी।

प्रोफेसर हारून खाँ शेरवानी परथाल के किस्से का सविस्तार वर्णन करने के बाद उसे दकनी संस्कृति की पहली संपूर्ण मिसाल ठहराते हैं। और बहमनी शासनकाल में उसके चिह्न बताते हैं। उदाहरण के लिए, मुजाहिद शाह बहमनी को उसकी प्रजा 'बलवंत' की उपाधि से याद करती थी। मुहम्मद शाह बहमनी (द्वितीग) के दामाद फ़ीरोजशाह के सुंदर मकबरे में ईरानी, हिंदू और तुगलक स्थापत्य शैली का कुछ इस प्रकार समावेश किया गया है कि एक-दूसरे से अभिन्न प्रतीत होती हैं। विजयनगर की इमारतें अपनी सुंदर मेहराबों और गुंबदों की वजह से मस्जिदें मालूम होती हैं। हावेल ने ख्यातिप्राप्त 'हाथीख़ाना' को मस्जिद करार दिया है। उधर बहमनी राजधानी गुलबर्गा पर हिंदू स्थापत्य शैली का इतना प्रभाव है कि हज़रत गेसू दराज़ बंदानवाज़ का मकबरा मंदिर प्रतीत होता है। अहमद शाह बहमनी के सालाना उर्स पर लिंगायतों के जंगम या महापुजारी का मक़बरे में नारियल फोड़ना, फिर क़ब्र पर फूल चढ़ाना और हिंदू कर्मकांड के बाद हिंदू-मुसलमानों का मिल-जुल कर उर्स मनाना और इस प्रकार की अनगिनत रोचक मिसालें जो हिंदू-मुस्लिम एकता और दकनी संस्कृति की जान हैं, बहमनी युग में मिलती हैं।

डॉ. ताराचंद के अनुसार ललित कलाओं में स्थापत्य कला का विशिष्ट स्थान है। यही वह महान और महत्त्वपूर्ण कला है जिस पर दूसरी कलाओं का दारोमदार है। मोहम्मद अब्दुल्ला चुग़ताई 'चारमीनार', और 'बादशाही आशूर खाना' की कला को कुतबशाही शैली क़रार देते हैं। और उनका दावा है कि इन दो इमारतों की स्थापत्य शैली की मिसाल विश्व में कहीं नहीं मिलेगी।

कुतबशाह सुल्तानों की मस्जिदों से शीआ संप्रदाय की आस्थाओं का पता चलता है। जो कला की दृष्टि से बहुत ही बारीक चीज़ है। अर्थात् मस्जिद की हर मीनार के साथ-साथ फ़र्श के ऊपर गचकारी में ध्वज की आकृति बनायी जाती थी जो अभी तक उस युग की मस्जिदों में विद्यमान है। इसका उद्देश्य कदाचित् यह भी था कि मस्जिद में ध्वज विद्यमान हैं। यह विशेषता ईरान में भी नहीं मिलती है।

कुतबशाही मस्जिदों के बुर्ज और मीनार का शिल्प विशिष्ट 'कुतबशाही' शैली का है। उनके दरवाज़ों और मेहराबों पर कुरान की आयतें, शीई दरूद, बारह इमाम और अली व मुहम्मद पर दरुद, ईरानी शिल्पियों की लिखावट – जैसे नस्तालीक़, नस्ख़, कूफ़ी, तुग़रा और सुलुस में सुलेख के दुर्लभ नमूने मिलते हैं। इनमें से अधिकांश प्रसिद्ध लिपिकार हुसैन बिन मेहमूद शीराज़ी के लिखे हुए हैं। शाही मज़ारों के गुंबदों पर कूफ़ी, सुलुस और नस्ख़ की सुंदर मिसाले हैं। 'संपूर्ण वाङ्मय मुहम्मद कुली' और वजही की 'कुतब मुश्तरी' की प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ नस्खें शैली में मिलती हैं।

स्थापत्य कला, चित्रकला, संगीत और नृत्य जैसी कलाओं को उस युग में सौंदर्यात्मक उत्कर्ष पर देखा जा सकता है। शहंशाह अकबर कहा करता था कि "शिल्पकला में मुझे ब्रह्म - ज्ञान की एक विशेष ढंग से अनुभूति होती है।" संगीत की मानवीय जीवन में एक महत्त्वपूर्ण' भूमिका है। यही बात नृत्य के साथ भी है।

कुतबशाही चित्रकला की अपनी विशेषताएँ हैं। यह चित्रकला 'दखनी कलम' के नाम से विख्यात है। इसमें सोना इस्तेमाल किया जाता था। पर्सी ब्राउन ने कहा है कि, "चित्रकला के 'दिल्ली कलम' से 'दखनी कलम' ज्यादा शानदार है।"

रिज्क्स संग्रहालय, एम्सटर्डम में मुहम्मद कुली के तीन चित्र सुरक्षित हैं जो दखनी क़लम में हैं। कंधों पर बेलबूटों वाला दुपट्टा है। चित्र का हाशिया सुसज्जित है। पगड़ी छोटी है जो सिर्फ़ सिर पर है। एक चित्र युवावस्था का है, दूसरे में वृद्ध है। दोनों में मूँछें नीचे की ओर झुकी हैं। मुहम्मद कुली के चित्र दखनी वेश-भूषा में हैं। जबकि जमशेद, इब्राहीम और अबुल हसन को मुग़ल वेश-भूषा में दिखाया गया है।

हैदराबाद स्टेट म्यूज़ियम में मुहम्मद कुली के चित्र विशुद्ध दखनी शैली मे हैं। सभी चित्र युवावस्था के हैं। एक चित्र मुहम्मद कुलीश मुग़ल शैली में भी है। चेहरे के आसपास वृत्त है, दायें हाथ में फूल है, बायें हाथ में तलवार की मूठ, कमरबंद में कटार, आंध्र फैशन का दुपट्टा कंधों पर, गले में मोतियो और जवाहरात के हार। दखनी कलम की विशेषता सोने के आभूषण हैं जो मुग़ल शैली में नहीं मिलते।

अब्दुल्ला कुतबशाह का चित्र-संग्रह उपलब्ध है। इसमें बादशाह का पूरा चित्र मौजूद है जिससे उस समय के सही शाही परिधान और शाही पराक्रम का अनुमान होता है। ओरियंटल कॉलेज मैगजीन, लाहौर में प्रोफ़ेसर हाफ़िज़ महमूद शेरवानी ने एक शोध-पूर्ण लेख दकनी शायर अहमद की 'लैला मजनूं' और 'उर्दू शायरी व चित्रकार' पर लिखा है जो मुहम्मद कुली के युग की सर्वोत्तम कृति है। इन दोनों कृतियों को देखने के बाद यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारतीय चित्रकला में दकनी

स्कूल विशेष महत्त्व रखता है, जिसे अगर 'गोलकुंडा स्कूल' कहा जाय तो अनुचित न होगा।

इब्राहीम कुतबशाह के युग में शाही फ़र्मान फ़ारसी और तेलुगु में जारी किये जाते थे। डॉ. ज़ोर ने 'मुहम्मद कुली कुतबशाह' में (पृष्ठ ३५९) और अब्दुल मजीद सिद्दीक़ी ने 'तारीख-ए-गोलकुंडा' में (पृष्ठ ३८४) मुहम्मद कुली को तेलुगु का शायर कहा है लेकिन कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया।

मुहम्मद कुली के दरबार में ग़ैर-मुस्लिम लोगों को भी बडे पद प्रदान किये जाते थे। जिस तरह इब्राहिम के दरबार में तेलुगु के कवियों का जमाव रहता था उसी तरह मुहम्मद कुली के दरबार में भी था। पट्टा मिट्टा सोमिए जू तेलुगु का राजकवि था। एक और तेलुगु कवि गणेश पंडितलु कुतबशाही सल्तनत का प्रधान-पंडित नियुक्त किया गया। कामी रेड्डी को जवाहरात, पालकी, मोरछल और छत्र से सम्मानित किया गया। मल्ला रेड्डी और तम्मा मंत्री तेलुगु साहित्यकार उच्च पदों पर आसीन थे।

प्रोफ़ेसर हारून खाँ शेरवानी के कथनानुसार संस्कृति की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि जन-समुदाय के विभिन्न स्तरों के बीच भावनात्मक ऐक्य हो, चाहे वे स्तर किसी धर्म या संप्रदाय से क्यों न जुड़े हुए हो। इस दृष्टि से कुतबशाही सल्तनत बीजापुर की आदिलशाही सल्तनत से भी श्रेष्ठतर थी।

कहने का अभिप्राय यह है कि कुली कुतबशाह का तैंतीस साला शासन-काल साहित्यिक सक्रियता, शैक्षिक प्रयासों और कलात्मक व रचनात्मक कामों के कारण सदैव याद रहेगा। कुतबशाही सल्तनत का यह स्वर्ण युग है जिस पर उर्दू और तेलंगी कविता का इतिहास सदैव गर्व करता रहेगा। उसी के दौर में शहर हैदराबाद बसा, नयी-नयी इमारतों का निर्माण हुआ। बाग़, फ़व्वारे, नहरें, दरियाओं के किनारे, सैरगाहें, पूजा-स्थल, पुस्तकालय और मदरसे कायम हुए। नृत्य, संगीत और चित्रकला का विकास हुआ। विद्वान ओर मनीषियों को समाज में प्रतिष्ठा मिली। ज्ञान के कारण मीर मुहम्मद मोमिन अस्तराबादी सल्तनत के वकील नियुक्त हुए। फ़ारसी के नामी शायर मीरज़ा मुहम्मद अमीन को मीर जुम्ला का महत्त्वपूर्ण दायित्व सौंपा गया। यशस्वी मुल्ला वजही उसके दरबार का मलिकुशुअरा (कवि-सम्राट) था।

मुहम्मद कुली के निधन (११ जनवरी, १६१२) के तुरंत बाद मीर मोमिन अस्तराबादी पेशवा ने सुल्तान मुहम्मद को, जो लगभग बीस वर्ष का था, तख़्त पर बिठा दिया। मुहम्मद कुतबशाह, मुहम्मद कुली का भतीजा और दामाद था। वह एक नेकदिल, शालीन और धार्मिक वृत्ति का आदमी था। उसने अपने चाचा मुहम्मद कुली का एक संग्रह संपादित किया और उस पर लंबी छंदोबद्ध भूमिका भी लिखी। वह खुद भी शायर

था। 'ज़िल्लुल्लाह' उपनाम से लिखता था। फ़ारसी शायरी तथा धर्म और इतिहास का ज्ञाता था। पुस्तकें पढ़ने और उन पर अपनी प्रतिक्रिया लिखने का उसे खास शौक़ था। 'वजही' उसके शासन-काल में अज्ञात-सा रहा। इसी दौर में उसने 'ताजुलहक़ायक' पुस्तक लिखी।

मुहम्मद कुतुबशाह के निधन (३१ जनवरी, १६२६ ई.) के बाद उसका बेटा अब्दुल्ला कुतबशाह (१६२६ से १६७२ ई) बारह वर्ष की आयु में तख्त पर बैठा। मुल्ला 'ग़व्वासी', मुल्ला वजही को दरबारी या राजनीतिक मोर्चे पर पराजित कर मलिकुशुअरा (कवि सम्राट) बन बैठा। अब्दुल्ला की माँ, मुहम्मद कुली की बेटी हयात बख़्शी बेगम, अब्दुल्ला के वयस्क होने तक व्यावहारिक रूप में शासन करती रही।

अब्दुल्ला कुतबशाह अपने नाना मुहम्मद कुली की तरह रसिक और वासनाप्रिय था। मार्च १६३४ में शासन के संपूर्ण अधिकार सल्तनत के पेशवा इब्न-ए-ख़तून को सौंप दिये गये। मुहम्मद सईद मीर जुम्ला था। अब्दुल्ला कुतबशाह की फ़रमाइश पर ही मुल्ला वजही ने दकनी गद्य की श्रेष्ठतम कृति 'सबरस' की रचना करके साहित्य के मोर्चे पर मुल्ला ग़व्वासी को नीचा दिखाया।

वजही ने दीर्घ आयु पायी। उसने कुतुबशाही सल्तनत के चार बादशाहों – इब्राहीम कुतबशाह, मुहम्मद कुली के कुतबशाह, मुहम्मद कुतबशाह और अब्दुल्ला कुतबशाह का जमाना देखा था।

अतएव कुतबशाही युग की इस ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में, विशेष रूप से मुहम्मद कुली के स्वर्णयुग में मुल्ला वजही का महान व्यक्तित्व आलोक-स्तंभ की भांति प्रतीत होता है।

यह था गोलकुंडा का 'दकन नूर हीरा' – जिसकी जगमगाहट ने दकनी संस्कृति, कला, साहित्य और आस्थाओं को आलोकित किया।

जीवन-वृत्त

यह बात आश्चर्यजनक है कि गोलकुंडा के महान शायर और गद्यकार तथा कुतबशाही दरबार के राजकवि मुल्ला वजही के जीवन-वृत्त के संबंध में प्रामाणिक साक्ष्म बहुत कम मिलती है। प्राचीन साहित्य के तमाम आलोचना और इतिहास-ग्रंथ वजही के ज़िक्र से खाली मिलते हैं। अलबत्ता मुल्ला निज़ामुद्दीन अहमद 'हदीक़तुल्ससलातीन' में अब्दुल कुतबशाह के यहां शाहज़ादे के जन्म के सिलसिले में वजही के इतिहास-लेखन की चर्चा सिर्फ़ एक वाक्य में मिलती है। मिसाल के लिए :

"अव्वल तारीख़ कि मुल्ला वजही शायर दकनी याफ़्ता अस्त।
आफ़ताब अज़ आफ़ताब आमद पदीद।"
– अर्थात् सूर्य, सूर्य से ही जन्म लेता है।

सबसे विचित्र बात इस सिलसिले में ध्यान देने योग्य है कि हकीम शम्सुल्लाह क़ादरी ने 'उर्दू-ए-क़दीम' के पहले संस्करण में सिरे से वजही का ज़िक्र ही नहीं किया। इस अंतराल में अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू की ओर से वजही की 'कुतब मुश्तरी' ओर 'सबरस' के प्रकाशित होने के बाद हकीम साहब ने 'उर्दू-ए-कदीम' के तीसरे संस्करण में वजही के जीवन की कुछ घटनाओं का समावेश कर लिया। डॉ. सैयद मुहीउद्दीन कादरी 'ज़ोर' ने 'उर्दू शहपारे' में वजही के जो हालात लिखे हैं उनका स्रोत ज़्यादातर वजही की रचनाएँ हैं। मौलवी नसीरुद्दीन हाशमी ने भी यह बात स्वीकार की है कि वजही की मस्नवी से उनके कुछ जीवन-प्रसंगों पर रोशनी पड़ती है।

जन्म एवं मृत्यु

सच बात तो यह है कि वजही की जन्म-तिथि एवं मृत्यु-तिथि दोनों पर अज्ञान का भारी पर्दा पड़ा हुआ है। शोधकर्ताओं ने इस पर्दे को उठाने के प्रयास में जो अटकलबाज़ियाँ की हैं उनसे मामला कुछ और उलझ गया है। वजही ने भी अपनी किसी रचना में इस गुत्थी को नहीं सुलझाया।

वजही की जन्म तिथि १५५१ और १५५६ के बीच निश्चित की जा सकती है। वजही की १६५६ और १६७१ ई. के बीच के दौर में मृत्यु हुई। इस अनुमान का आधार यह है कि इब्न निशानी ने मस्नवी 'फूलबन' (१६५६ ई.) में उन तमाम शायरी के उस्तादों के नाम लिये हैं जो उस समय तक संसार से विदा हो चुके थे, इसमें वजही का नाम नहीं हैं। वजही के निधन का ज़िक्र सबसे पहले गोलकुंडा के एक शायर 'तबई' ने अपनी मस्नवी 'बहरामो-गुल अंदाम' (१६७१ ई.) में किया है।

वजही की मृत्यु १६६० ई. के आसपास हुई थी और उसे दरगाह हज़रत हसन बरहना शाह में दफ़न किया गया। यह दरगाह हैदराबाद के पूर्व में मोहल्ला चम्पा पेट (चंचल गौडा के पास) में स्थित है।

सैयद हसन बरहना शाह के प्रति अब्दुल्ला कुतबशाह की गहरी आस्था थी और उसके एक अमीर मालिक परस्त खाँ ने बरहना शाह की दरगाह का निर्माण कराया और उसे हैदराबाद में ख्याति और प्रतिष्ठा प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। कदाचित् इसी कारण हैदराबाद के इस बड़े शायर को भी वहीं दफ़्न किया गया। बरहना शाह और उनकी दरगाह के बारे में 'तारीख गुलज़ारे आसफी' में विस्तार से चर्चा की गयी है।

वजही के बरहनाशाह में दफ्न होने का उल्लेख 'सबरस' की प्राचीन हस्तलिखित पांडुलिपि के कातिब गुलाम हुसैन गुलामी आत्मज मीर मुहम्मद ग़ूस बुखारी ने १८८२ ई. में अपनी प्रति में किया है।

नाम - असद उल्लाह

'दीवाने वजही' फ़ारसी की हस्तलिखित पांडुलिपि में एक शे'र ऐसा मिलता है जिससे वजही के नाम का पता चलता है। रदीफ़ (ते) की एक ग़ज़ल (पृष्ठ ३६) के मक़्ता (अंतिम शे'र) में वह कहता है :

इस्म असदुल्ला वजीहा अस्त तख़ल्लुस
आरायश दुकानचा बाज़ार कलाम अस्त

– अर्थात् नाम असदुल्ला है, 'वजीहा' तख़ल्लुस है। मेरी दुकान और बाज़ार की सजावट मेरी शायरी है।

यह एक ऐसा अंतःसाक्ष्य है जिसके बल पर पूरे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि प्राचीन दकनी उर्दू के मशहूर शायर और गद्यकार वजही का नाम वजीहउद्दीन या वजहउद्दीन नहीं था जैसा कि अब तक शोधकर्ता अनुमान लगाते आये हैं, बल्कि असद उल्ला था। इस नाम से उसकी धार्मिक आस्था तथा विश्वासों का भी पता चलता है।

उपनाम

वजही, वजीह, वजीही और वजह।

असद उल्लाह ने अपनी फ़ारसी शायरी में 'वजही', 'वजीह', 'वजीही' और एक जगह 'वजह' उपनाम भी रखा है। उदाहरण के लिए :

वजही - 'वजही' अम दावा-ए-नबूवत कर्द
वही आवर्द पेश जिब्राईल

वजीह - शर्मिंदा-ए-बतानुम अर्जी बेज़री 'वजीह'
कस हाले मन बा शाहे दकन गुफ़्त य नागुफ़्त
वजीही - सुखनहा-ए-दरोग़ चंदरा इज़्ज़त या ख़्वाहद बूद
'वजीही' शायरी बगुज़ारो फ़िक्रकारे दीगर कुन
वजह - दहान 'वजह' पर अज़ ख़ून सत जाम मी चा ख़ोरम
कुजा सत मील बाशरत खराब मातम रा

मस्नवी 'कुतब मुश्तरी' मे 'वजही' और 'वजीही' दोनों उपनाम मिलते हैं :

तू 'वजही' कह्या शेर की धात का
हो अज यास्त तुजते मज़ा बात का पृष्ठ-१८
'वजीही' तेरा ज़ेहन ज्यूं बर्क़ है
तुजे और वअज़ियां मे ले फ़र्क़ है पृष्ठ-१७

दसवीं और ग्यारहवीं सदी हिज्री में भारत मे ख़ास कर दकन में और ईरान में 'वजही' उपनाम के कई शायर हुए है। सख़ावत मिर्ज़ा इस तथ्य की व्याख्या इस रूप मे करते हैं :

"वजही तख़ल्लुस के ईरान और हिंदुस्तान में कई शायर गुज़रे हैं। एक तो वजही तुग्रशी मुलाज़िम अकबर शाह था जिसे नक़ी ओहदी ने १०१९ हिज्री में गुजरात में देखा था। दूसरा वजही (अली अकबर बेग) कर्द शाह अब्बास सानी का समकालीन एक मशहूर मिज़ाह गो शायर था। तीसरे सैयद वजीह उद्दीन अलवी गुजराती (९१० से ९९८ हिज्री) भी फ़ारसी में कहा करते थे और तख़ल्लुस वजही था।

चौथा मुल्ला वजही गोलकुंडवी दकनी ज़बान का एक बाकमाल शायर और नस्रनिगार भी मशहूर है।"

'वजही' से संबंधित इन अनुमानों के कारण कतिपय विद्वानो को भ्रम भी हुआ है। जैसे खान रशीद का कहना है :

"इन तमाम बातों से इस चीज़ की पूरी सभावना है कि 'सबरस' का रचनाकार शायर तो हो सकता है लेकिन संभव है वही वजही न हो जिसने 'कुतब मुश्तरी' लिखी है। हो सकता है 'सबरस' का वजही 'कुतब मुश्तरी' के वजही का बेटा या पोता हो।"

मुल्ला की सम्मानसूचक उपाधि

हकीम शम्सुल्ला क़ादरी, मौलवी अब्दुल हक़ और नसीरुद्दीन हाशमी सबने 'वजही' के साथ 'मुल्ला' की सम्मानसूचक उपाधि भी लगा दी है। और इसका स्रोत शायद मुल्ला निज़ामुद्दीन अहमद की पुस्तक 'हदीक़तुल्सलातीन' है जिसमें वजही और ग़व्वासी

के वाद-विवाद का उल्लेख करते हुए वजही के साथ 'मुल्ला' का शब्द सम्मान प्रदान करने के लिए लगा दिया गया है।

हालाँकि वजही की शायरी और गद्य-रचनाओं में मुल्ला का स्पष्टीकरण कहीं नहीं मिलता। कातिबों ने भी कई स्थानों पर वजही की प्रतिष्ठा और वृद्धावस्था का ध्यान रखते हुए सम्मान के लिए 'मियाँ' और 'शाह' उपाधियों का इस्तेमाल किया है।

पैतृक जन्म-भूमि : खुरासान

वजही ने अपने कुछ फ़ारसी शे'रों में पैतृक जन्म-भूमि की ओर भी संकेत किया है। वह कहता है कि मैं तो हिंदुस्तान में पैदा हुआ लेकिन पूर्वजों की पवित्र ख़ाक का संबंध खुरासान से है :

मन ज़ि हिंद आशकार गुश्तम लेक
तबूअ पाक-ए-मन अज़ खुरासान अस्त

लेकिन यह नहीं मालूम होता कि उसका जन्म किस स्थान पर हुआ ? यह अनुमान ज़्यादा मान्य है कि उसका जन्म गोलकुंडा में हुआ था। उसे अपनी पैतृक जन्म-भूमि खुरासान पर गर्व है। अपने शे'रों में जगह-जगह वह इसकी अभिव्यक्ति करता है। जैसे :

बया दीवान पुरफ़ैज़ मुरा सू-ए-खुरासाँ बर
कि अज़ गुलबांग शेर ख़ेश शोहरत दर दकन दारम

शे'र नादर मानी अम मी रफ़्त दर शीराज़ अगर
हम चू 'हाफ़िज़' शुहरा-ए-मुल्क-ए-खुरासां मी शुदम

निवास

वजही के एक शे'र से उसके घर के परिवेश का संकेत मिलता है। मुहम्मद कुली कुतबशाह के आरंभिक शासन-काल में गोलकुंडा की आबादी बहुत बढ़ गयी थी। इस समस्या पर क़ाबू पाने के लिए मुहम्मद कुली ने मूसी नदी के किनारे नये शहर की बुनियाद डाली। हैदराबाद के निर्माण से पहले गोलकुंडा में मकानों की तंगी का जो हाल था, उससे तंग आकर, ऐसा मालूम होता है कि वजही ने गोलकुंडा की आबादी से बाहर अपना मकान बनाया था जिसकी ओर वह इस शे'र में संकेत करता है :

तंग आमदा अज़ ख़ाना हमा शहर 'वजीही'
चूँ जानवराँ कल्बा बसहरा मी रख़्श बस्त

वजही की देश-भक्ति और जन्म-स्थान

मुल्ला वजही ने मस्नवी 'कुतब मुश्तरी' में आत्म-प्रशंसा के साथ-साथ अपने वतन

की महिमा का गान भी किया है। अतएव उसके निम्नांकित शे'र दकन में अब तक लोकप्रिय हैं और उर्दू भाषा के पहले शे'र है जिनमें देशप्रेम की भावना को इतनी प्रभावशाली अभिव्यक्ति मिली है :

दकन-सा नहीं ठार सिंसार में
बंज फ़ाज़लाँ का है ठार मे
दकन है नगीना अगूठी है जग
अंगूठी की हुरमत नगीना है लग
दखन मुल्क कूं धन अजब साज है
कि सब मुल्क होर दखन ताज है
दखन मुल्क भू तेज ख़ासा अहे
तिलंगाना उसका खुलासा अहे

इससे पता चलता है कि वजही गोलकुंडा ही में पैदा हुआ था और उस युग में गोलकुडा, तेलंगाना की जान था।

वजही की धार्मिक आस्थाएँ

मुल्ला वजही शीआ संप्रदाय का था। मस्नवी 'कुतब मुश्तरी' मे इसके अनगिनत प्रमाण मौजूद हैं। नात (हज़रत मुहम्मद की प्रशंसा में लिखी रचना) में छब्बीस शे'र हैं। इसकी तुलना में मन्कबत (अली की प्रशंसा में लिखी रचना) मे इक्यावन शे'र हैं। अगर ज़िक्रे मे'राज के शे'र भी नात में शामिल कर लिये जायँ तो इसकी सख्या साठ हो जाती है। लेकिन ऐसा मालूम होता है कि ज़िक्रे मे'राज भी हज़रत अली की दयालुता और उदारता बताने के लिये किया गया है। वैसे नात का एक शे'र है :

कि चौदह मुलक का तू सुल्तान है
अली-सा तेरे घर मे परधान है

हज़रत अली के अलावा खुल्फ़ा-ए-राशिदीन में से किसी और का ज़िक्र नहीं किया गया। 'ज़िक्रे मेराज' में चर्चित मेराज के बाद अंत में वजही ने लिखा है कि-

मोहम्मद कूँ जिस रात मे'राज हुई
न था दूसरा वाँ अली बाज कोई
इनों तीनों को बात यो फ़ाम है
समझाना वो चौथे का नीं काम है

हज़रत अली की प्रशंसा में एक जगह तो यह लिखा है :

खबर सब अहे नेक और बद की तुज
सुहाती है जागा मोहम्मद की तुज

दूसरी जगह शायद खंदक की जंग के उस प्रसंग की ओर संकेत करता है जब इब्न अब्दूद का मुक़ाबला हज़रत अली ने किया था :

उठे यार सब यार बंद बहोत कर
भरोसा नबी का अथा तुज उपर

इसी प्रशंसा में वह खिलाफ़त के अंतर्विरोधों का ज़िक्र भी करता है :

लग्या तुज हुकम बीच जलथल होने
तू आखिर हुआ सबसे अव्वल होने
वही बल है आखिर जो कुज बल हुए
जो आखिर हुआ वोच अव्वल हुए

फिर कहता है तेरा मुक़ाम खिलाफ़त से कहीं ऊँचा है और मसनद पर तेरा बैठना लज्जा की बात है :

खिलाफ़त से ऊंचा तेरा ठार है
खिलाफ़त तुजे बैसना आर है

इसी प्रशंसा के अंत में वह कहता है :

अली का मुहब नीं जी कोई सच तू जान
हरामीपने का वही है निशान

पूरी दास्तान में जगह-जगह हज़रत अली का ज़िक्र किया है। जब मुहम्मद कुली कुतबशाह अजगर को मारता है तो वहाँ भी वजही कहता है कि शाहज़ादा, अली वलीं की मदद से कामयाब हुआ :

अली वली थे मददगार वाँ
खुदाबिन न कोई शै को था यार वाँ

इसी तरह जब शहज़ादा 'बुलंदगढ़' पहुँचता है तो राक्षस के क़िले मे खुदा, मुहम्मद और अली का नाम लेकर प्रवेश करता है :

खुदा होर मोहम्मद अली ले नाऊँ
रखे कोट में शाह बेशक पाऊँ

जब वह राक्षस को मारता है तब भी वजही कहता हे :

अली दस्त थे शै कूँ हर ठार फतह
कि नुसरत रफ़ीक होर है यार फ़तह

मेहताब परी, मुहम्मद कुली को विदा करते समय निशानी के रूप में एक घोड़ा देती है। वजही उसकी प्रशंसा करते हुए कहता है :

तुरंग खूब खुश शक्लो वासिल है
कि हैदर के दुलदुल केरा नसल है

बहरहाल खुद वजही की मस्नवी से सिद्ध होता है कि वह शीआ सिद्धांतों में विश्वास रखता था। 'सबरस' की भूमिका से भी इसकी पुष्टि होती है :

"अव्वल खुदा है, नबी दोयम, सोयम (तीसरा) है
वली। यो तीन नाउं थे मोमिन के दिल को
तजल्ली (प्रकाश)। मोहम्मद को जिस रात हुई
मेराज, वहाँ दूसरा न था कोई अलीबाज।"

वजही के साहित्यिक जीवन के तीन दौर

प्रोफ़ेसर अख्तर हुसैन, वजही के फ़ारसी दीवान (हस्तलिखित) के अंत:साक्ष्य के आलोक मे वजही के साहित्यिक जीवन को तीन दौरों में बाँटा जा सकता है :-

१- मुहम्मद कुली कुतबशाह (१५८० से १६१२ ई.) के ज़माने में वजही ने एक शायर की प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा पाई।

२- मुहम्मद कुतबशाह (१६१२ से १६२६ ई.) के युग में वह गुमनामी की ज़िंदगी बसर करता रहा।

३- अब्दुल्ला कुतबशाह (१६२६ से १६७२ ई.) के युग मे वह फिर चमका और 'सबरस' लिखकर जिंदा जावेद[1] बन गया।

उसकी फ़ारसी रचनाओं में इन तीनो दौरो की ओर संकेत पाये जाते हैं। मुहम्मद कुली के युग में उसके यश का सूर्य मध्याह्न पर पहुँच गया था। वह कुतुबशाही दरबार का सबसे बड़ा शायर और गोलकुंडा का मलिकुश्शुअरा (कवि-सम्राट) था। निश्चित ही उस युग में, जो उसकी ख्याति का युग था, उसे संपूर्ण सुविधाएँ उपलब्ध रही होंगी। अपने समय के बादशाह की तरह वह एक रसिक-वृत्ति और विलास-प्रिय शायर था। इस ज़माने मे उसका जीवन शराब और भोग-विलास में डूबा हुआ था। अपनी इस दिनचर्या की ओर उसने अपनी फ़ारसी रचनाओं में स्पष्ट संकेत किये हैं। लेकिन जब उसका संरक्षक और क़द्रदान उठ गया और सुल्तान मुहम्मद का दूसरा दौर शुरू हुआ तो उसके सुख-चैन मे विघ्न पैदा हो गया। सुल्तान अहमद को साहित्य से बैर तो नहीं था लेकिन वह शराब और भोग-विलास का शत्रु था। भला वजही जैसे सुरा और सुंदरी के प्रेमी का निर्वाह ऐसे पवित्र और परहेजगार बादशाह के साथ किस तरह हो सकता था। शाही दरबार से उसका संबंध-विच्छेद हो गया। और फिर इसी के साथ दारिद्र्य

१. अमर

और अभावों ने आ घेरा और देखते-ही-देखते वह एक सुखी आदमी से एक कंगाल आदमी बन गया :

बादशाहे जहाँ मुफलिस अम
खाक़ हम नेस्त दर ख़जाना मा[१]

और दकन से इस क़दर उकता गया कि स्थान छोड़ने का मंसूबा बाँधने लगा। एक शे'र में कहता है कि ऐ वजही ! तू अपने इल्मो फ़ज़्ल के रहते हुए इतनी अभावग्रस्त ज़िंदगी क्यों जी रहा है ? क्यों नहीं दकन की सरजमीन छोड़कर किसी और मुल्क की राह लेता :

वजीही बाईं फ़ज़्लो हुनर बे सीमो ज़र मनशीं
ब अक़्लीम दिगर रो खेज़ ता कि दर दकन बाशी

फिर यह कहकर सांत्वना देता है कि कभी तू दौलतमंद था और आज मुफ़लिस हो गया है तो इस हालत पर दिल क्यों दुखाता है क्यों ज़माने का दस्तूर है कि वह कभी साज़गार, कभी नासाज़गार :

गर ज़ दौलत दर गुदाई आमदीं ग़मगीं मबाश
कारे दुनिया ईं चुनीं अस्त गाह हस्त निगाहे नेस्त

लेकिन निर्धनता और अभावग्रस्तता ने उसे जीवन की कटु वास्तविकता का परिचय करा दिया था। विशेष रूप से इसलिए कि धनाभाव में वह मदिरापान के शौक़ को पूरा नहीं कर सकता था और फिर 'बुतों' के आगे भी उसे शर्मिंदा होना पड़ता था क्योंकि प्रेम भी तो धनाश्रित होता है। इस अनुभूति को वह इन शब्दों में व्यंजित करता है :

शर्मिंदा-ए-बुतानम अज़ीं बेज़री 'वजीह'
किस हाल मन ब शाह दकन गुफ्त या नगुफ़्त[२]

सुल्तान मुहम्मद के ज़माने में मुहम्मद कुली के युग की शराबनोशी और सारी

---

१. मैं दुनिया का बादशाह हूँ, ग़रीब हूँ। मेरे खज़ाने में मिट्टी तक नहीं है।
२. मै अपने प्रिय से ग़रीबी के कारण शर्मिंदा हूँ। दकन के बादशाह से कोई मेरा यह हाल कहे या न कहे।
इन फारसी शे'रो का अनुवाद दिनांक २५-३-९० को डॉ. कमर रईस, दिल्ली विश्वविद्यालय से हुई बातचीत पर आधारित है – [अनुवादक]

रंगरेलियाँ खत्म हो चुकी थीं। वजही जैसे रसिक शायर के लिए यह परिस्थिति असह्य थी। कहता है कि आजकल बादशाह के भय से इस शहर में शराब की एक बूँद भी मयस्सर नहीं है और मैं शराब की महफ़िल के बिना ज़िंदा नहीं रह सकता। तो बताओ कि अब क्या करूँ ? क्या शराब की बजाए भंग पीने लगूँ या अफ़ीम का इस्तेमाल शुरू कर दूँ :

ज़ खौफ़ दरीं शहर बादा पैदा नेस्त
ब बग मील कुनम या ब कोकनार कुदाम

और एक जगह बड़े क्रोध के साथ कहता है कि कोतवाल की क्या मजाल कि हमें शराब पीने से रोके ? अध्यात्म की भीख माँगनेवालों पर बादशाह का हुक्म नहीं चल सकता :

चीस्त कुदरत शहना रा ता मना अज़बादा कुनद
बर गदायान तरीक़त हुक्मे शाहंशाह नेस्त

अपनी एक ग़ज़ल में उसने यह संकेत भी किया है कि किसी निर्दयी खुदा ने, जिसके दिल में पहले से ही मेरे ख़िलाफ़ नफ़रत की आग भरी हुई थी, मौक़ा पाकर बादशाह को मेरी ओर से रुष्ट कर दिया और मेरी नेकनामी को नुकसान पहुँचाया। यह बताना मुश्किल है कि इन शेरों मे वजही ने किस बादशाह की ओर संकेत किया है। अनुमान यह है कि यह संकेत सुल्तान मुहम्मद की तरफ़ है।

आख़िरकार समय बदला। अब्दुल्ला कुतबशाह ने सल्तनत की बागडोर सँभाली तो वजही के दिन भी फिरे। नये बादशाह ने इस वयोवृद्ध और पुख़्ता शायर को अपने दरबार में आमंत्रित किया और दरबार के सम्मानित लोगों और शायरों ने उसे सिर आंखों पर बैठाया। इस नये दौर का उसने बड़े उत्साह के साथ स्वागत किया। कहता है कि तुम्हें खबर नहीं कि दौरे तंग दस्ती ख़त्म हो गया। अब मैंने भीख माँगने और मुँह छुपाने की ज़िंदगी ख़त्म कर दी है और नये बादशाह के स्नेह व कृपा से फिर धनवान हो गया हूँ :

नशनीदा 'वजीह' गदाई गुज़ाश्तम
गुश्तम तवंगर अज़करम बादशाहे नो

मुल्ला वजही - सूफी या सुरा-सुंदरी का प्रेमी ?

डॉ. नूरुल सईद अख़्तर, प्रो. अब्दुल क़ादिर सरवरी मरहूम, हामिद छपरवी और

डॉ. 'जोर' ने वजही को सूफ़ी के रूप मे प्रस्तुत करने की कोशिश की है जिसमें वे असफल रहे हैं।

वास्तव में वजही शराब ही नहीं सुंदरियों का भी प्रेमी था। अपनी इन्हीं रुचियों के कारण वजही को मुहम्मद कुतब शाह के शासन-काल में उपेक्षा का जीवन बिताना पड़ा था। वह एक महान शायर और गद्यकार था, एक मँजा हुआ कलाकार था किंतु सूफ़ी नहीं था। हालाँकि उसने तसव्वुफ़ (अध्यात्म) पर एक गद्य-रचना 'ताजुलहक़ायक़' की थी। वह खुला हुआ एक सुरा-सुंदरी प्रेमी था। वह स्वय कहता है :

मन-ओ-किनार-ए-निगारे-ओ-शराबो-ओ शब हमाशब
रसीदा सीना बसीना कशीदा लब दर लब[1]

---

१. मेरी प्रेमिका की गोद है, शराब है और रात है। मैं सीने से सीना मिलाकर और होठ से होंठ मिलाकर शराब खींचता रहता हूँ।

उर्दू की पहली मौलिक मस्नवी
कुतब मुश्तरी

उर्दू के पितामह मौलवी अब्दुल हक ने ही 'सबरस' के बाद वजही की मस्नवी 'कुतब मुश्तरी' की खोज की और 'सबरस' से पहले उर्दू जगत को इससे परिचित कराया। १९३९ ई. में अंजुमन तरक्क़ी उर्दू (हिंद) नयी दिल्ली ने इसे प्रकाशित किया। मौलवी साहब ने इस मस्नवी को सिर्फ़ दो हस्तलिखित पांडुलिपियों की सहायता से संपादित किया है।

वजही ने यह मस्नवी मुहम्मद कुली की मृत्यु से सिर्फ़ दो साल पहले ही यानी १६०९-१० ई. (१०१८ हिजरी) मे बारह दिन में कह डाली थी। यह दखनी की पहली मुद्रित मस्नवी है। यद्यपि इसके विभिन्न खंड अलग-अलग दास्तानों के टुकड़ों के जोड़ मालूम पड़ते हैं। उदाहरण के लिए, बादशाह के संतान न होना, बड़ी मन्नतों के बाद होना, शहज़ादे का सपने में अदृष्ट सुदरी पर मोहित होना, फिर उसकी खोज में घर से निकलना, अजगर और राक्षस को मारना, देव, परी, जिन आदि अतिप्राकृतिक तत्त्वों में कोई आकर्षण नहीं है। अलबत्ता इस मस्नवी की सबसे बड़ी विशेषता उपमाओं और प्रतीकों की नवीनता है।

वजही मस्नवी का आरंभ हम्द[1], मुनाजात[2], नात[3] और मन्क़बत[4] की पुरानी परंपरा के अनुसार करता है।

वजही ने हम्द से ही मस्नवी का जो ठाठ बाँधा है, वह वजही और ग़व्वासी की प्रतिद्वंद्विता की भूमिका है। इस मस्नवी से प्रतिद्वंद्विता का आरंभ होता है जो कमोबेश तीस वर्ष तक जारी रहता है।

मस्नवी 'कुतब मुश्तरी' वजही की गर्वोक्तियों का आरंभ है और 'सबरस' उनका अंत।

रचना का उद्देश्य

खान रशीद के मत में वजही ने 'कुतब मुश्तरी' पुरस्कार प्राप्त करने के उद्देश्य से लिखी। लेकिन मेरा विचार है कि पुरस्कार-प्राप्ति के अलावा भी मस्नवी की रचना का एक उद्देश्य था।

---

१. खुदा की तारीफ़ २. खुदा से दुआ करना ३. रसूल की तारीफ ४. दीन या मज़हब के बुजुर्ग लोगों की तारीफ़ । इन चारों अपेक्षाओं को पूरा करने के बाद शायर मस्नवी की मूल कथा पर आता है।

१ - वह यह कि दखनी उर्दू में मौलिक मस्नवी कही जाये। क्योंकि हम देखते हैं कि दखनी मस्नवियाँ, फ़ारसी मस्नवियों या दास्तानों के काव्यानुवाद हैं। यही कारण है मस्नवी 'कुतब मुश्तरी' को पहली मौलिक मस्नवी होने का गौरव प्राप्त है।

२ - दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य काव्य-रचना संबंधी दृष्टिकोण प्रस्तुत करना था जो विस्तार से 'दर शरह शे'र गोयद' शीर्षक के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है। और निश्चय ही यह एक असाधारण बात है जो किसी दूसरी मस्नवी मे नहीं मिलेगी।

३ - मुल्ला ग़्वासी को मुहम्मद कुली के दरबार में आने से रोकना भी एक उद्देश्य था जिसमें वजही सफल हुआ। इस मस्नवी से ही दखनी उर्दू की पहली धारा का आरंभ होता है और इसका अवसान 'सबरस' की रचना है। मस्नवी में गर्वोक्ति के शे'रों को केवल पुरस्कार प्राप्त करने का साधन-मात्र नहीं समझना चाहिए। गर्वोक्ति की लय भाषा की नयी भंगिमा के कारण इतनी तीव्र हो जाती है कि दखनी गद्य में भी वजही इसका एक नया कीर्तिमान स्थापित कर देता है। यह सब अपने प्रतिद्वंद्वी से लोहा मनवाने के लिए किया गया था। यह और बात है कि ग़्वासी अब्दुल्ला कुतबशाह के दरबार में राजकवि बन जाता है और वजही को दरबारी मोर्चे पर पराजित करता है। लेकिन साहित्यिक मोर्चे पर 'सबरस' के कारण वजही अपराजेय ही रहता है।

४ - कला का प्रदर्शन भी मस्नवी की रचना का एक बड़ा उद्देश्य था। वजही ने उपमाओं एवं प्रतीकों का कौशल दिखाया है और भाषा-शिल्प के आधुनिक प्रयोग किये हैं।

५ - शीआ आस्थाओं के प्रचार-प्रसार के पहलू को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

वजही ने सुल्तान मुहम्मद कुली कुतबशाह की शान में, मस्नवी के फ़ार्म में एक विस्तृत क़सीदा लिखा जो मस्नवी 'कुतब मुश्तरी' के नाम से जाना जाता है। निस्संदेह, यह वजही की असाधारण प्रयोग-क्षमता और आधुनिक सर्जनात्मकता का एक तुच्छ चमत्कार है। क्योंकि दरबार में क़सीदागोई ही पुरस्कार प्राप्ति का एक बड़ा साधन था। इसलिए वजही ने अपनी सारी क्षमता क़सीदागोई पर ही व्यय कर दी है कि न वह कथानक को सँवार सका और न चरित्र-चित्रण के साथ न्याय कर सका।

'कुतब मुशतरी' में सिर्फ़ बारह पात्र हैं। संभव है वजही ने भी मुहम्मद कुली की तरह बारह इमामों की सख्या के आधार पर बारह पात्र रखे हों। मोहम्मद कुली ने इसी विचार से 'महल कोह-ए-तूर' के बारह बुर्जों में अपनी ख़ास 'बारह प्यारियां' रखी थीं। वह कहता है :

नबी सदके बारह इमामा करम थे
करो ऐश जम बारा प्यारियां सूं प्यारे।

और वे बारह पात्र ये हैं : –

१ - इब्राहीम कुली कुतबशाह -१५८० ई. में जिनका निधन हो चुका था मस्नवी में नायक के पिता के रूप में है। इसलिए इस मस्नवी में इब्राहिम कुतबशाह की जो प्रशंसा है वह कथा के अंग के रूप में है न कि तत्कालीन बादशाह के लिहाज़ से। और मुहम्मद कुली कुतबशाह की प्रशंसा इसलिए नहीं कि वह स्वयं कथा-नायक है।

२ - मुहम्मद कुली कुतबशाह - मस्नवी का नायक।

३ - अतारद - चित्रकार। नायक का परामर्शदाता और अंतरंग।

४ - मुश्तरी - नायिका, बंगाल की शहज़ादी।

५ - ज़ोहरा - मुश्तरी की बहन, मिर्रीख़ ख़ा की प्रेमिका, गौण कथा की नायिका।

६ - मिर्रीख खां - शाह सरतान के वज़ीर असद खां का बेटा, ज़ोहरा का प्रेमी, गौण कथा का नायक। कुतब ने उसे देव की क़ैद से छुड़वाया। फिर ज़ोहरा से शादी कराई और बगाल का तख्त भी उसके हवाले किया।

७ - शाह सरतान - हल्ब का बादशाह, मस्नवी में सिर्फ़ उसका नाम आता है।

८ - वज़ीर असद खां का पिता, शाह सरतान का वज़ीर, मस्नवी में सिर्फ़ उसका नाम आता है।

९ - महताब परी - कु तब उसे अपनी बहन बना ले ता है ।

१० - सुलखन परी - महताब की दासी और अंतरंग।

११ - मेहरवान - मुश्तरी की दाई और अंतरंग।

१२ - खुश आवाज़ - गायक, उत्सव और हर्ष के अवसर पर गीत गानेवाला।

मस्नवी 'कुतब मुश्तरी' में चरित्र-चित्रण बहुत सामान्य है। नायक के स्वभाव में अधैर्य और नासमझी मुखर है। उसे हर क़दम पर अतारद की मंत्रणा की आवश्यकता महसूस होती है। और यहाँ तक कि जब वह मुश्तरी से मिलता है तो दोनों भावनाओं के आवेग में बह जाते हैं, अतारद को उन्हें टोकना पड़ता है।

मुश्तरी का चरित्र भी प्राणवान नहीं है। वह एक अक्खड़ और भावुक स्त्री है। अलबत्ता मुहम्मद कुली के माता-पिता और मेहरवान के चरित्र बड़ी खूबी के साथ पेश किये गये हैं। यद्यपि दाई का उपदेशक जैसा रूप कहीं-कहीं खटकता जैसे वह कर्मचारी न हो। लेकिन वजही इसकी चारित्रिक विशिष्टता का एहसास पैदा कर देता है। इसलिए बुरा मालूम नहीं होता।

दास्तान के समूचे वातावरण के विभिन्न स्तरों के बीच आंतरिक एकता का एहसास कला की अनिवार्यता है और कला की इस अपेक्षा की ओर से उदासीनता निश्चय ही एक बहुत बड़ा दोष है। वजही के यहाँ इस आंतरिक एकता के एहसास

का भी अभाव है। अतिप्राकृतिक चीज़ों के चित्र अधूरे हैं और जादुई वातावरण की सृष्टि में वजही बुरी तरह असफल रहा है। अतिप्राकृतिक देव और अजगर इतने कमज़ोर और बेजान नज़र आते हैं जैसे उनमें जान ही न हो और इस तरह घटनाओं की गंभीरता का एहसास तक नहीं होता।

वजही ने अतिप्राकृतिक चीजों का चित्रण अपनी युगीन कल्पना के अनुसार किया है। उदाहरण के लिए अजगर आग उगलता है। साँस लेता है तो चिंगारियाँ और धुआँ निकलता है। एक निर्जन क्षेत्र में एक पहाड़ की गुफा में रहता है। उसकी आँखें मशाल की तरह जलती रहती हैं। कोई और जीव-जंतु उसके समीप नहीं जा सकते। इन विशेषताओं के रहते हुए तलवार के एक हाथ में दो टुकड़े हो जाते है।

राक्षस के तीन सिर, चार हाथ, बड़े-बड़े दाँत और बालों की जगह साँप हैं। हर सुबह नौ हाथियों का नाश्ता करता है। कुकर्मी, चरित्रहीन और धूर्त है। लेकिन आयत-उल-कुर्सी[1] पढ़कर फूँक देने से पास नहीं आता और सीधा एक तीर में जहन्नुम पहुँच जाता है। तलवार के एक ही वार में बीस कोस पर जाकर उसका सिर गिरता है।

'बलंदगढ़' और 'विकट पहाड़' इस भूमि पर ऐसे स्थान हैं जो सुनसान निर्जन और दुर्गम हैं। मनुष्य वहां फटक नहीं सकता। बलाओं का अड्डा है। जलवायु ऐसी प्रतिकूल है कि कोई ज़िदा नहीं रह सकता। मगर शहज़ादे पर इसका कोई असर नहीं होता। कोहकाफ़ पर परिया रहती हैं।

महताब परी और मिरीख ख़ा के क़िस्से अवांछित हैं। सिर्फ़ क़िस्सा-दर-क़िस्सा की रिवायत की खानापूरी की गयी है।

महताब और कुतब को ज़बर्दस्ती बहन-भाई बनाना बहुत अस्वाभाविक प्रतीत होता है। इसका कोई औचित्य नहीं बताया गया। हालाँकि दास्तानों में एक नायक चार शादियाँ आराम से करता है। वजही ने इस मुकाम पर ज़बर्दस्त ठोकर खाई है।

भावाभिव्यंजना एवं संवाद

वजही ने 'कुतब मुश्तरी' में कई स्थलों पर भाव-चित्रण में अद्भुत कौशल का परिचय दिया है। उदाहरण के लिए जब शहज़ादा विदा होता है तब यह स्थल बहुत मार्मिक हो उठता है। शहज़ादा माँ-बाप से कहता है कि मैं दिल के हाथों लाचार हूँ और अब नहीं रह सकता। ये शे'र प्रसंग की दृष्टि से निहायत ही सच्चे और प्रभावशाली हैं :

---

१. वह आयत, जिसे शत्रु से सुरक्षा पाने के उद्देश्य से पढ़कर फूँका जाता है।

निकलना किसे घर से भाता अहे
मुंजे दिल यो सितमी ल जाता अहे
मुंजे यां रहना भोत मुश्किल अहे
कि इतना किया सब सूं ये दिल अहे

मुश्तरी, कुतबशाह की तस्वीर देखकर जब बेसुध हो जाती है तो दाई की भावनाओं को बड़ी सुंदरता के साथ व्यंजित किया है :

नवा महल है क्या हुआ याँ इसे
लेकर जाऊं याँ ते अता काँ इसे

मुश्तरी को सुध आती है। दाई के आग्रह और सांत्वना के बाद वह दिल की बात कहना चाहती है। लेकिन रहस्य के प्रकट हो जाने का संकोच है। ज़बान लड़खड़ा जाती है :

ज़बाँ मन मने लटपटाती अहे
नहीं बात यकायक आती अहे

अंत में जब मुश्तरी, दाई को कुतब की ओर संकेत करके कहती है कि इसने मुझे बेसुध किया तो दाई भी तस्वीर देखकर चकित रह जाती है। लेकिन नसीहत के तौर पर कहती है :

तू चंचल चतर नार इतनी सी है
बड़ी छंद भरी भोत फ़ित्नी सी है
यो कैसा अहे इश्क जो तू करी
भली है तू शाबाश जो नीं डरी

लेकिन वास्तविकता यह है कि कुछ स्थलों को छोड़कर संवाद औसत दर्जे के हैं। बात को अकारण तूल देकर आयासपूर्वक नसीहत की गुंजाइश पैदा की गयी है। इसके संवादों में अच्छा-खासा भाषण का रंग दिखाई देता है जिसके कारण प्रश्न-उत्तर की नोंक-झोंक का स्वाद ग़ायब हो गया है। यहाँ तक कि बात-चीत में कहीं-कहीं सामान्य शिष्टाचार का ध्यान भी नहीं रखा गया है।

आरंभ में ही समाचार जानने से पहले शहज़ादे के माँ-बाप का शहज़ादे के पाँव पड़ना और फिर बातचीत करना उचित प्रतीत नहीं होता। शहज़ादा भी बड़ी अनौपचारिकता से अपने प्रेम के उद्‌गार सुना देता है। सिर्फ़ इस बात को लेकर असमंजस में है कि सपने का ज़िक्र करे या न करे ? माँ-बाप उसे सांत्वना देने का प्रयास करते हैं। सुंदर स्त्रियों के बीच शहज़ादे को रखा जाता है। फिर बादशाह स्वयं आकर पूछता है - 'तेरा जीव इतनो में किस पर है कह ?' बाप-बेटे में ऐसी अनौपचारिकता

कम से कम भारतीय संस्कृति के अनुकूल तो नहीं है। और फिर शहज़ादा इस पर संकोच नहीं करता बल्कि वह तुरंत भाषण देता है कि बेशक् इनमें एक से एक बढ़कर हसीन है मगर मुश्तरी की बात इनमें से किसी में नहीं। यह लम्बा भाषण संवादों की साभिप्रायता, सार्थकता और सहजता को क्षति पहुँचाता है।

अभिप्राय यह है कि पूरी मस्नवी में विस्तृत संवाद है जिनमें उपदेश का स्वर प्रधान है। अलबत्ता मेहरबान और दाई के कुछ संवाद रोचक और स्वाभाविक है।

दृश्य-चित्रण

वजही ने 'कुतब मुश्तरी' में दृश्य-विधान के अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। जैसे मजलिस-ए-तरब, शहज़ादे का ख्वाब, बुलंदगढ़, विकटकोट, अजगर, राक्षस आदि का चित्रांकन बहुत अच्छा है। महताब परी का बाग़ और मुश्तरी के महल में अतारत की चित्रकारी भी खूब की :

विचित्तर चित्र वो चतर ने लग्या

मस्नवी के अंत में 'बरदिन मुहम्मद कुली बकारत[1] मुश्तरी' शीर्षक के अंतर्गत वजही ने मुश्तरी- कुतब के सेज-संग्राम का बहुत ही जीवंत चित्र खींचा है। क्योंकि हमारी कविता तथा गद्य की दास्तानो की यह विशेषता है कि वे ऐंद्रिकता को सही परिप्रेक्ष्य में उभारती हैं लेकिन औचित्य के अभाव में यही ऐंद्रिकता, अश्लीलता का पर्याय बन जाती है। ऐंद्रिकता का तत्त्व विश्व की समूची लोक कथाओं और दास्तानों में एक विशेष रंग के साथ विद्यमान है।

नैतिक दृष्टिकोण

वजही ईश्वर को अखिल सृष्टि का नियंता मानता है। हम्द में (प्रशंसा) ईश्वर के समस्त नाम और गुण एक-एक कर गिनाये गये हैं। उसकी अद्वैत में आस्था है :

अपी शहर आपीच बाज़ार है
अपे बेचे आपी खरीदार है

मनुष्य ईश्वर के विधान के आगे विवश और असहाय है।

हज़रत रसूल दयालु, अंबिया के दीपक, रसूलों के कृपालु, और मोमिनों के हितैषी हैं :

तूं सुल्तान, मुसहफ़ अलम है तेरा
नबियां होर वालियां सब हशम है तेरा

हज़रत अली बहादुर, उदार, शीलवान और काफ़िरों का नाश करनेवाले हैं। लेकिन

---

१. कौमार्य, कुँवारापन

इसमें अतिशयोक्ति के कारण इस्लाम को तलवार के बल पर फैलाने की बात कही गयी है। यह एक ग़लत आरोप है :

किया मोमिनां काफ़िरा मार मार
कुफ्र का दंदी, दीन को दोस्तदार

शिष्टाचार में आतिथ्य का बड़ा महत्त्व है। मनुष्य को सहृदय होना चाहिए। अनुग्रह और कला को प्रोत्साहन बादशाह को शोभा देते हैं। कला को क्षति पहुँचाना बादशाह के लिए अशोभनीय है।

संसार नश्वर है, इससे शिक्षा लेनी चाहिए :

कि दायम रहने का नहीं ठार याँ
नहीं कोई आया है दो बार याँ

संसार कई तरह से मनुष्य को ईश्वर से उदासीन बना देता है :

भुलाती है दुनिया बहुत साज़ सूँ
न को जीऊ ला इस दगा बाज़ सूँ

घमंड नहीं करना चाहिए। तृष्णा से दूर रहना चाहिए। लोभी और कामांध हमेशा दुःखी रहता है।

न्याय बड़ी चीज़ है और उपासना से भी अधिक सम्माननीय है।

जिसे दुःख न हो सुख का मूल्य नहीं जानता।

मोमिन और मुसलमान को नम्रहृदय और लज्जाशील होना चाहिए। इसी तरह सहानुभूति, स्वार्थत्याग, उदारहृदयता और परदुःख कातरता से संबंधित अनेक शे'र पाये जाते हैं।

देश-प्रेम पर भी बल दिया गया है।

आस्थाएँ एवं विश्वास

वजही ने प्रायः सात और नौ की संख्या को अधिक महत्त्व दिया है। उसके ज्ञान के अनुसार सात समुद्र और सात पृथ्वीलोक हैं। नौ आकाश हैं। सूर्य, चंद्रमा और नक्षत्र परिक्रमा करते हैं। और संसार के स्वामी की खोज में रहते हैं। पृथ्वी स्थिर है। प्राचीन हिंदू मिथक के अनुसार वह पृथ्वी को शेषनाग के फन पर टिका हुआ बताता है। हिंदू विश्वासों के अनुसार यह भी प्रचलित है कि पृथ्वी के नीचे पानी है जिसमे एक मछली है। इस मछली पर एक गाय खड़ी है जिसने अपने सींग पर पृथ्वी का बोझ उठा रखा है। पृथ्वी और आकाश दोनों अधर में लटके हुए हैं :

मुअल्लक रख्या है ज़मीन आसमान।
इसी तरह मनुष्य चार तत्वों का पुंज है।

बनाया तूं आदम को भी चाव सूँ
सो खाक़ होर अगन, पानी होर बायु सूँ

आग के लिए चकमक का ही प्रयोग होता था। कुमैत, कूड़ा-करकट को अपनी ओर खींच लेता है :

कि लबदा ए ज्यूं कुहर बाकाह कूं

अतः मानवीय चिंता और जिज्ञासा की दरिद्रता ने श्रद्धाहीनता और अतिप्राकृतिक तत्त्वों को बढ़ावा दिया। इसके साथ ही जिन रहस्यों की वास्तविकता को मनुष्य की बुद्धि न जान सकी उन्हें पारलौकिक सत्ता से जोड़ दिया है।

रीति-रिवाज

'कुतब मुश्तरी' में अंत्येष्टि की रीति का उल्लेख नहीं है। हर्ष के अवसर पर लोग बादशाह को तोहफ़े और नज़रें देते और अपनी हैसियत के अनुसार इनाम और जागीर पाते। मनोरंजन के लिए सभाएँ आयोजित होती थीं। नृत्य, संगीत और शराब के दौर चलते। महफ़िल सजाने के लिए खूब रोशनी की जाती।

यात्रा पर निकलते समय ईश्वर को सौंपा जाता और निशानी दी जाती पर्दे का रिवाज था। लेकिन यह बात कहीं-कहीं आती है। दक्षिण में पर्दा-प्रथा का प्रचलन ब्राह्मणों ने किया था। इसलिए हिंदुओं में पर्दे का रिवाज मुसलमानों के आगमन से पूर्व भी था।

बादशाह जब चाहता देश भर की रूपवान स्त्रियों को बुला सकता था। विवाह के बाद दुल्हन की मुँह-दिखाई की रस्म होती। बधाई और आशीष देने के लिए पानी वार कर पिया जाता :

कि पानी पितियां उस ऊपर वार-वार

अमीर खुसरो ने 'ऐजाज़-ए-खुसरविया' में पान के बारे में बहुत-कुछ लिखा है। लेकिन दक्षिण वाले भी उत्तर भारत के लोगों से कुछ पीछे न थे। वजही भी पान का ज़िक्र करता है :

कधीं कोई खिलाती अथी पान आ

साइत देखकर यात्रा शुरू की जाती। उमराव और शहज़ादे यात्रा में सेना के साथ गुलाम, बाँदी, गायक और क़व्वाल आदि भी ले जाते थे। शराब के साथ उससे जुड़ी हुई वस्तुएँ - सुराही, प्याला, मटका, साक़ी, गजक, कबाब और सुगंधित पदार्थ आदि भी विद्यमान हैं। ऊद, केवड़ा, गुलाब, सिंदूर और गुलाल आदि का भी ज़िक्र है।

चित्रकला में 'मानी'[१] व 'बहज़ाद'[२] ही मूर्द्धन्य कलाकार समझे जाते थे। प्रकृति

---

१. ईरान का एक प्रसिद्ध चित्रकार जिसका जन्म ८३१ ई. में हुआ था।
२. ईरान का एक प्रसिद्ध चित्रकार।

के चित्रों से दीवारों को सजाया जाता। बाजारों में दलाल भी होते :

मुश्ताकी[1] के बाज़ार में मैं बैचती हूँ जीव
दल्लाल किधर होर खरीदार कहाँ है ?

वाद्य-यंत्रों में बाँसुरी, चंग, रबाब, ढोल और जलाजल का ज़िक्र है। हाथियों की अमारी, ऊँट पर बाँधने की काठी, साँप और सपेरों का भी ज़िक्र है।

सभ्यता एवं संस्कृति

मस्नवी 'कुतब मुश्तरी' में उस युग की सभ्यता एवं संस्कृति की झाँकी भी दिखाई देती है। विभिन्न व्यवसायों, विशिष्ट और साधारण लोगों के जीवन, रहन-सहन के तरीक़े और शिष्टाचार से संबंधित अनेक सूचनाएँ मिलती हैं। हमें सहज ही मालूम हो जाता है। कि उस युग में दरबारों में सल्तनत के सामंतों के अलावा विविध कलाओ के ज्ञाता भी हुआ करते थे। दरबारे-ख़ास और दरबारे-आम का भी रिवाज था।

बादशाह के चरित्र मे प्रजा-वत्सलता, उदारता और न्यायप्रियता का होना ज़रूरी बताया गया है। ज्योतिषी भी दरबार से जुड़े हुए थे। जो शकुन-अपशकुन में विश्वास न रखनेवाले बादशाहों के विभिन्न कार्यों पर अपना आदेश देते। जन्म-कुंडली का रिवाज हिंदू सभ्यता के प्रभाव से मुसलमानों में भी पाया जाता था। ज्योतिष-विद्या का संबंध प्रायः ब्राह्मणों से था। मुहम्मद कुली के जन्म पर भी शकुन विचार किया जाता है :

लग्या देखने फाल[2] अंबर रम्माल[3]

अकबरी दरबार के प्रभाव से दकन में बादशाह को सिजदा करने की रस्म भी पाई जाती है :

अतारद किया शाह को सिर भों में धर

दरबार से जुड़े हुए शिल्पकार, चित्रकार, शायर और सुलेखक भी हुआ करते थे। यहाँ तक कि उल्मा[4], उस्ताद और मुल्ला आदि भी विशिष्ट स्थान रखते थे। जश्ने-तरब (उत्सव आदि) के लिए साज़िंदे, गायक और नर्तक भी नौकर रखे जाते थे। ललित कलाओं के अलावा सिपहगरी और पहलवानी की भी बड़ी क़द्र की जाती। सिपाही सिर पर तुर्रा लगाते थे :

कि तुर्कां सरों पर तुरे लाये हैं

महलों में दूध पिलाने और बच्चों की देखभाल के लिए दाई रखी जाती थी :

---

१. अभिलाषा २. शकुन ३. रम्लविद्या का ज्ञाता ४. ज्योतिषी

सो पखवे में शह दाई की यूं अछे
कचा मोती सीपी मने ज्यूं अछे

इसमें बच्चों के पालने और झुनझुने का भी ज़िक्र है। दाई बड़ी आयु तक संरक्षको जैसा सम्मान पाती थी। उसके साथ आम कर्मचारियों का-सा व्यवहार नहीं किया जाता था। बल्कि बड़ी सम्मान की दृष्टि से देखी जाती थी। वह बुज़ुर्गों की तरह रोक-टोक करने का अधिकार रखती थी। मेहरबान दाई का उपदेशक जैसा व्यवहार इसका प्रमाण है। वह मुश्तरी के जवान हो जाने के बाद भी उसी बुज़ुर्गाना अंदाज़ में डाँटती नज़र आती है। गुस्सा और नाराज़ी भी व्यक्त करती है। यहाँ तक कि वह दूध न बख़्शने की धमकी तक देती है।

हरम में बादशाह की बेगमों और लौंडियों के अलावा ऐसी औरतें भी होतीं जो बादशाह की सेवा में रहतीं, पातुराएँ कहलाती थीं। वे सुंदर और रूपवान होने के साथ-साथ रीति-रिवाज और सभा के शिष्टाचार से भी वाकिफ़ होतीं ।

महल में भी गायको और नर्तकों को नौकर रखा जाता था ताकि बेगमों, शहज़ादियों और उनकी सहेलियों का दिल बहला सकें। एक-दो कनीज़ें अंतरंग होने का दर्जा भी रखती थीं जो बड़ी गोपनीयता के साथ विशेष सेवाएँ भी करती थीं, जैसे महताब के साथ सुलखन परी। महल के ऊँचे होने पर गर्व किया जाता था। महल में बुर्ज और कंगूरे ज़रूर होते। महल का आंतरिक भाग चित्रकला और नक़्क़ाशी से सुसज्जित होता। महल से लगा हुआ बाग़ ज़रूर होता।

मुश्तरी और भागमती

निकट अतीत में हैदराबाद में डॉ. मुहीउद्दीन क़ादरी 'ज़ोर' और हारून खां शेरवानी के बीच भागमती की कहानी को लेकर एक साहित्यिक विवाद हो चुका है। डॉ. 'ज़ोर' भागमती को वास्तविक और प्रो. शेरवानी 'कहानी' ठहराते हैं। 'सबरस' (मासिक) हैदराबाद के डॉ. ज़ोर विशेषांक में 'ज़ोर' और शेरवानी के विस्तृत लेख पक्ष और विपक्ष मे प्रकाशित हो चुके हैं। 'ज़ोर' और शेरवानी के समर्थकों में इस विषय पर अब भी नोंक-झोंक हो जाती है।

डॉ. 'ज़ोर' का विचार है कि मुल्ला वजही ने मस्नवी 'कुतब मुश्तरी' में भागमती और मुहम्मद कुली के प्रेम को शायरी में ढाला है।

विशुद्ध ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस क़िस्से पर नज़र डाली जाय तो हमें मुहम्मद कुली के समकालीन इतिहास में सिर्फ़ 'तारीख़े-फ़रिश्ता' ही ऐसी पुस्तक मिलती है जिसमें भागमती या भागनगर का ज़िक्र मिलता है। 'फ़रिश्ता' ने अपने इतिहास के उसी खंड में कुतबशाही खानदान की दास्तान लिखी है। १६०९ ई. तक अर्थात् हैदराबाद की

बुनियाद से अठारह साल बाद तक की घटनाओं का वर्णन किया है। और यह एक स्वाभाविक बात है कि परवर्ती इतिहासकारों ने इस वर्णन को प्रामाणिक मान लिया हो। लेकिन यदि हम 'फ़रिश्ता' के समकालीन इतिहास-ग्रंथों पर दृष्टिपात् करें, चाहे वे बीजापुर में लिखे गये या अहमदनगर में या स्वयं गोलकुंडा में तो हमें मालूम होगा कि इनमें से किसी एक में भी भागमती या भागनगर का उल्लेख नहीं है।

मौलवी अब्दुल हक़ साहब ने 'कुतब मुश्तरी' की भूमिका में स्पष्ट शब्दों में इस बात से असहमति व्यक्त की है कि यह मस्नवी मोहम्मद कुली और भागमती की सच्ची प्रेम-कहानी है। मस्नवी 'कुतब मुश्तरी' पर यदि सूक्ष्म दृष्टि डाली जाय तो वजही की नवीनता और आधुनिकता का अन्वेषण करनेवाली प्रतिभा का पता चलता है। वजही ने 'कुतब मुश्तरी' की कथा का आधार बादशाह की ख़ानदानी ख़िताब 'कुतब' को बनाया है। जिस तरह संपूर्ण तारामंडल एक स्थिर और अटल तारे 'कुतब' के आसपास परिक्रमा करता दिखाई देता है, उसी तरह मस्नवी के तमाम पात्र कुतब के गिर्द घूमते हैं। कुतब का सबसे ज़्यादा विश्वास-पात्र अतारद है। कुतब अपनी इच्छा से बंगाल की सल्तनत मिर्रीख़ ख़ाँ को दे देता है। जो 'जल्लाद फ़लक' या 'तुर्क फ़लक' की भांति शक्तिशाली है। 'ज़ोहरा' जो सबसे ज़्यादा प्रकाशवान तारा है और 'महताब' जो हमारी धरती का एक मात्र चंद्रमा है, ये सब जैसे अपने आपको 'कुतब' के साथ एकमेक करना चाहते हैं। वास्तविकता यह है कि मस्नवी 'मुश्तरी' एक रोमानी रूपक है और इसका असलियत से सिर्फ़ इतना संबंध है कि कुतबशाह का हुक्म तमाम मुल्क पर चलता था। कथाकार ने इसे सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है कि मुश्तरी तक उसके चित्र पर मुग्ध हो जाती है। वह इतना शक्तिसंपन्न है कि दूर-दराज़ के इलाक़े बंगाले को भी मिर्रीख ख़ां को सौंप सकता है। इस मस्नवी का भागमती की कहानी से दूर का भी संबंध नहीं।

इन तथ्यों के प्रकाश में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि न तो वजही की मस्नवी की नायिका 'मुश्तरी' ही 'भागमती' है और न ही मुहम्मद कुली की मुश्तरी और हैदर महल ! सचाई यह है कि यह तमाम कहानी 'फ़रिश्ता' के कल्पनाशील मन की उपज है। लेकिन याद रहे कि 'फ़रिश्ता' के अधिकांश वृत्तांत ग़लत और अविश्वसनीय साबित हो चुके हैं।

कुतब मुश्तरी की साहित्यिक महत्ता

डॉ. ग्राहम बैली अपनी पुस्तक 'ए हिस्ट्री ऑफ़ उर्दू लिटरेचर' में 'कुतब मुश्तरी' को उत्कृष्ट मस्नवी ठहराते हैं। जबकि मौलवी अब्दुल हक़ के मतानुसार यह मस्नवी कोई श्रेष्ठ कोटि की रचना नहीं है। प्रो. सैयद एहतिशाम हुसैन, डॉ. ग्राहम बैली की राय से सहमत हैं।

मौलवी अब्दुल हक़ साहब जो 'कुतब मुश्तरी' को श्रेष्ठ कोटि की मस्नवी नहीं मानते वे भी इसकी उपमाओं और प्रतीकों के प्रशंसक हैं। बकौल डॉ. नज़ीर अहमद साहब के इंद्रिय-संबंधी उपमाएँ ग्यारहवीं सदी हिजरी में प्रचलित हो चुकी थीं। वजही की 'कुतब मुश्तरी' इब्राहीम आदिलशाह की 'किताब नौरस', कुल्लियात मुहम्मद कुली कुतबशाह और अब्दुल के 'इब्राहीम नामा' में इंद्रिय-संबंधी उपमाओं की भरमार है।

'कुतब मुश्तरी' की झिलमिलाती, सुंदर और रंगीन उपमाओं की एक झलक देखिए। 'तारीफ़ सिफत-ए-फ़रज़ंद' खंड में एक अछूती उपमा है – शहज़ादा दाई की गोद में ऐसा लगता है जैसे सीप में कच्चा मोती :

सो पखवे में शह दाई की यूं अछे
कचा मोती सीपी मने ज्यूं अछे

'सिफ़त-ए-मेज़बानी' खंड में – चाँद का दाग़ ऐसे दिखाई देता है जैसे सोने की प्याली में मुश्क :

कलंक चाँद में है सो दसता है यूँ
कि सुन्ने की प्याली में है मुश्क ज्यूँ

'सिफ़त मजलिस तरब' खंड में –चार बालिश (मसनद) पर शाहज़ादा, चौथे बुर्ज में चांद की तरह दिखाई देता है :

दसें चार बालिश्त में शाह यूँ
कि चौथे बुर्ज में अछे माह ज्यूँ

'मशविरा बा अतारद' खंड में – अतारद, मुश्तरी के बारे में कहता है

परियाँ सुंदरियाँ सब सुधन हूर है
कि बाती सो चांदा दो ज्यूं सूर है

आँखें – आँखियाँ लाल इस नार नारां कहयाँ
कि मोती उपर ज्यूँ चढ़े मानक्याँ

पुतली – दसे पुतली यूं नार की आँक में
कि पैठिया भंवर आंब की फाँक में

संस्कृत की शृंगार रस की कविता का प्रभाव लक्षित होता है। ग़ज़ल के मतले में दो उपमाएं – आँखें, थाल में जगमगाते मोती। बदन पर बिखरी लटें, जैसे पानी पर लहराते नाग : –

दसें धन मुख बीच नैनां कि मोती थाल में झुलते
लटाँ छुटतन उपर यूं है भवंक ज्यूं नीर पर झुलते

इसी ग़ज़ल के एक शे'र में प्रेमिका मादक और चंचल आँखों की उछलते-कूदते मृगशावक और काले बादल जैसे बालों की काले पर्वतों से उपमा दी गयी हे :

बदल रंग स्याम धन कँटल, नयन अबलक निपट अचपल
कि काले डोंगरां के तल बचे हिरनाँ के ऊछलते

मेहताब परी के नखशिख वर्णन में मनोहारी उपमाएँ दी गयी हैं। जैसे लटें चेहरे पर बिखर गयी हैं तो इन काले बालों में आँखें ऐसी प्रतीत होती हैं जैसे दो मछलियाँ जाल में फँसी हों :

अछीं नैन उस केस काले मने
कि मछलियाँ दो सपड़ियाँ हैं जाले मने

आंखें बालों में इस तरह चमकती हैं जैसे बादलों में बिजली :

उछलतियाँ हैं बिजलियाँ उभालाँ तले
कि नैनाँ झलकते हैं बालाँ तले

आंख की लालिमा :

दसे लालक इस नैन बिच यूँ सँवर
कि सुर्खी सटी की सफ़ेद आब पर

काली पुतली गुलाबी डोरे :

सटे लाल डोरियाँ सूं पुतली कजल
कि मिर्रीख के घर में आया जुहल

प्रेमिका की देह पर मोती ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे सर्व पर जुगनू :

सो धन के तन उपर दसे यूं गौहर
कि बैठे हैं जुगने मगर सर्व पर

तिल जैसे हब्शी बच्चे :

दसे यूं तिल उसके मुख मैदान मे
कि हब्शी बच्चे हैं गुलिस्तान में

लटें सुंबल की छाँव, गाल गुलाल :

लटां आरहिसयां यूँ सो धन गाल पर
कि सुंबल की ज्यूं छांव गुल्लाल पर

'खाना शुदन शह बा सूए मुश्तरी' खंड में शह, फूल, खंग (घोड़ा), बादे बहार के चित्र देखिए :

हुआ उस तुरंग के उपर शह सवार
कि शह फूल होर खंग बादे बहार

'आवर्दन मुश्तरी मुहम्मद कुली रा बाबमहल' – 'मुश्तरी' शबरंग घोड़े पर सवार होती है तो उसकी कई उपमाएँ दी गयी हैं, जैसे धुएँ में दीपित अंगारा या नाग के शीष पर मणि या जैसे कौए पर मोर बैठा हो या जैसे अंधेरी रात में मशाल :

हुई सार शबरंग तुरंग पर दो नार
धुएँ में अछीं ज्यूं झलकता अंगार
पदम जगमगे जोत सूं नाग पर
कि ताऊस बैठा मगर काग पर

'मुलाकात आशिक व माशूक' — मुश्तरी का नख-शिख जैसे उपमाओं की दीपमाला है या उज्ज्वल मोती है जिसमें दीप्ति और सौंदर्य का सम्मिश्रण है :

अंचल स्याम तल यूं झमकते है गुहर
कि शबरात है आज धन के उपर
दिसें तन रतन धन के मुख नूर अंगे
कि रोशन किये हैं दिये सूर अंगे
सो धन के दो कुपच पर गुहर छाये हैं
कि पहरौं पे तारे उतर आये हैं
कि धन नाम मिल यूं है मुखड़े के संग
कि पकड़ा है मूं में बचो को भुवंग
दिसें मांग मोत्यां बिच सीर में
कि दिसते हैं तारे मगर नीर में
बिखरे हैं कुंतल पेशानी उपर
कि बादल पड़े हैं टूट पानी उपर
अलक मिल धन गाल मक़बूल सूं
कि या नाग लबदा अहे फूल सूं
अंखियां पर भवां छंद सूं छाए हैं
कि तुरकौं सिरौं पर तुरो लाए हैं

पीठ पर पड़ी हुई चोटी जैसे तख्ती पर सुलूस[1] शैली में लिखा हुआ अलिफ़ :

रही चोटी यूं पीट पर छब सूं आ
पटी पर अछे ज्यूं अलिफ सुलूस का

शहज़ादा जब राक्षस को मारता है :

उलट यूँ दसे ज़ख्म खा सीर में
कि ज्यूं अक्स अछे झाड़ का नीर में
फ़िरंग म्यान ते काढ़ी शह जान यूँ
निकलता है कंचली में ते नाग ज्यूँ

---

१. अक्षरों की विशिष्ट बनावटवाली एक शैली।

अतः वजही का सबसे बड़ा कौशल उपमाओं और प्रतीकों की नवीनता है। एक ही विषय को सौ रंग के साथ प्रस्तुत करना और बात से बात पैदा करना उसके रचनाकार की मूल रुचि है। खान रशीद के शब्दों में, भावों को मूर्त करने में वजही मीर हसन तक नहीं पहुँच पाता लेकिन उपमाओं में वह 'नसीम' और 'मोहसिन' से भी आगे बढ़ा हुआ है।

दकन में इस्लामी संस्कृति हिंदू आचार-विचारों से काफ़ी हद तक प्रभावित हुई और ईरानी विश्वासों से भी उसका संबंध बना रहा। यही कारण है कि वजही की 'कुतब मुश्तरी' में इसकी झलकियाँ मिलती हैं। मूल अरबी मिथकों के साथ-साथ भारतीय मिथक भी पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए लैला-मजनूं, यूसुफ़-ज़ुलेखा, महमूद-अयाज़, सुलेमान, शीरीं फरहाद, दज्जाल, बिलक़ीस, मानी, रावण, ख़ुसरो-शीरीं, गोपी-कृष्ण, आब-ए-ज़मज़म, दुलदुल, दारा, अफ़रास्याब, सिकंदर, फ़रीदूं, ज़हाक, जमशेद, नूह, हुद हुद सुलेमान, ख़ातिम सुलेमान, लुकमान, हुमा, हातिम, नो शेख़ाँ, सीताराम –

कि गुमती है सीता मगर राम सूं

वजही ने 'कुतब मुश्तरी' में "दर सिफ़त इश्क़ गोयद" शीर्षक से सिर्फ़ नौ शेरों में मानवीय प्रेम की स्वस्थ परंपरा का सूत्रपात किया जिसे बाद के महान शायर मीर तक़ी 'मीर' ने अपनी शायरी में नये आयामों पर विकसित किया। 'मीर' अपनी इश्क़िया मस्नवी में प्राचीन रूढ़ियों से बचाव करता है और वजही का अनुसरण करते हुए 'बयाने-इश्क़ ' से ही इसकी शुरूआत करता है।

प्रेम के संबंध में वजही के विचार बहुत उदात्त, पवित्र और महान हैं। प्रेम के आदर्शों में उसने गुल-ओ-बुलबुल, दीपक-पतंग, चंद्रमा-चकोर, भौरां-कमल, सर्व-कमरी का नाम लिया है। प्रेम की परंपरा में वजही लैला-मजनूं, शीरीं-फ़रहाद, यूसुफ़-ज़ुलैख़ा और महमूद-अयाज़ का ज़िक्र करता है लेकिन किसी भारतीय प्रेम-कथा का उल्लेख नहीं करता।

वजही की दृष्टि में प्रेमी को सहृदय, लज्जाशील और निर्भय होना चाहिए। उसकी सुंदरता की कसौटी के अनुसार प्रेमिका को मधुभाषी, ऊँचे क़दवाली, विशाल नेत्र वाली, कली की भाँति सुकोमल, लम्बे बालों वाली, क्षीण कटि, भरे हुए उरोजों वाली और चरित्रवान होना चाहिए। लज्जा की प्रतिमूर्ति और मितभाषी होना भी ज़रूरी है। मुख पर तिल भी हो तो :

अंचल इस मुसल्लो है जिब्रील का
सियाह तिल सो सुब्हा सराफील का

वजही की कला-दृष्टि

'कुतब मुश्तरी' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वजही ने 'दर शरह शे'र गोयद' शीर्षक के अंतर्गत बड़ी खूबसूरती के साथ कविता के निकष और मूल्यों पर परिपक्व दृष्टि के साथ विचार किया है। सिर्फ़ यह अंश ही मस्नवी के साहित्यिक महत्त्व को और अधिक बढ़ा देता है। इसमें यह निर्दिष्ट किया गया है कि शे'र की असली खूबी क्या है और इसमें क्या-क्या कौशल होना चाहिए। सबसे पहली बात वह यह कहता है कि शे'र में शब्दों की मितव्ययिता हो। ज्यादा कहने की हवस न कर, पर अच्छा कह। मगर इसमें कुछ नज़ाकत होनी चाहिए। फिर वह कहता है कि शे'र कहने में सबसे बड़ी मुश्किल यह आ पड़ती है कि शब्द और अर्थ में ऐसा अंत:संबंध हो कि दोनों अभिन्न हो जायें। शब्द उचित, चुने हुए और अर्थपूर्ण हों। अर्थ में अगर शक्ति है तो बात का मज़ा ही और हो जाता है। अलबत्ता इसका सँवारना ज़रूरी है। मसलन अगर महबूब हसीन है तो सँवारने से और ज्यादा हसीन हो जायेगा। एक बात बड़ी अच्छी यह कही है कि शे'र में कोई जिद्दत (नयापन) होनी चाहिए। दूसरों का अनुसरण करना आसान है लेकिन शायर वँही है जो अपने दिल से नयी बात पैदा करता है। कहता है कि मैं तो उस रंगीन बात का क़ायल हूँ जो दिल में जाकर बैठ जाये जिससे दिल में वलवला पैदा हो और आदमी सुनकर उछल पड़े।

इन विचारों को व्यक्त करने के बाद आलोचना के कुछ नियमों की ओर संकेत किया गया है। साथ ही शे'र के फ़न के बारे में कुछ और नुक्ते भी पेश किये हैं।

शायरी के प्रतिमान के बारे में वह कहता है, सहजता और प्रवाह फन की बुनियादी खूबियां हैं। ग़ैर फ़नकाराना तवालत (विस्तार) एक दोष है :

जो बेरब्त बोले तो बैतां पचीस
भला है जो एक बेत बोले सलीस

शायरी एक फ़न है और यह बग़ैर प्रवाह, एकसूत्रता और सौंदर्य के फ़न का दर्जा नहीं पा सकती। फ़न खूब से खूबतर की तलाश का नाम है। लताफ़त और नज़ाकत भी हुस्न की अदाएँ हैं। शायरी में नाजुक और लतीफ़ खूबियाँ पाई जानी चाहिएँ। खूबी सिर्फ़ बाहरी न हो, आंतरिक भी हो। अर्थ और शब्द दोनों का सौंदर्य ज़रूरी है। शब्द और अर्थ में अंत संबंध भी जरूरी है।

सौंदर्य, क्रमबद्धता, अर्थ की गहराई, अलंकरण वे मूल्य हैं जो बड़े उस्तादों से सीखे जा सकते हैं। लिहाज़ा वजही की दृष्टि में परंपरा का बड़ा महत्त्व है। अगर बड़े फ़नकारो को पढ़ने से शे'र कहना आ जाये तो शब्द-चयन और उन शब्दों में अर्थ भरने का सलीका पैदा हो जाता है। शायरी में इन्सानियत का पुरज़ोर इज़हार होना चाहिए। लेकिन

मानी में चमक, सजावट से ही पैदा होती है :

रख्या एक मानी अगर ज़ोर है
वले भी मज़ा बात का होर है

सजावट और सँवार से सुंदरता का वर्णन और अधिक आकर्षक हो उठता है। कला की सफलता सुंदर को और अधिक सुंदर बनाना है। वजही के लिए सुंदरता ही कला है। सिंगार की हुनरमंदी बहुत अच्छी बात है लेकिन गंभीर अर्थ पैदा करना इससे भी बड़ी बात है। अनुभूति और अभिव्यक्ति का एकात्म होना कला की ऊँचाई है। जिद्दत (नवीनता) से कला में ताज़गी पैदा होती है। शायरी की परख उसकी मार्मिकता से होती है। शायरी में अनूठेपन के साथ नुकीलेपन की खूबियाँ भी होनी चाहिए। कला का महत्त्व उसकी अंतःशक्ति से जुड़ा हुआ है। अनमोलपन का संबंध ईश्वरीय प्रेरणा से है।

वजही को शायरी में अभिव्यक्ति की सीमाओं का एहसास है। वजही श्रेष्ठ कोटि की आलोचना को सृजनात्मक प्रक्रिया करार देता है। अतएव, वजही को उर्दू आलोचना के इतिहास में पद्य-बद्ध आलोचना का पुरोधा कहा जा सकता है।

वजही की उर्दू शायरी

मुल्ला वजही की कुल साहित्यिक निधि यह है - मस्नवी 'कुतब मुश्तरी' के अलावा 'कुतब मुश्तरी' की आठ ग़ज़लें, 'सबरस' की दो ग़ज़लें, बयाज़-ए-मुहम्मद अकबर उद्दीन की सिद्दीकी की तीन ग़ज़लें, एक ग़ज़ल तबर्रुकात-ए-वजही, कुल चौदह ग़ज़लें, नौ रुबाइयां 'कुतब मुश्तरी' में और एक रुबाई 'सबरस' में, कुल दस रुबाइयाँ और दो मर्सिए, अब तक की शोध का परिणाम हैं। इस अत्यल्प सामग्री से भी वजही की सर्जनात्मक क्षमता और कल्पनाशीलता का बखूबी पता चलता है।

नमूने के तौर पर उसकी चौदह ग़ज़लों के मतले द्रष्टव्य हैं :

१ - पिऊ अपने कूं टुक आज मैं निस सपने देखी सोय कर
जब पिऊ चलूया सुट सेज मुंहज तब सोती उठी रोयकर

२ - चलो न, जायें ए सहेलियां ! हमारा लाल जां अचता
वले कोई जानता नहीं है कि भोंदू वो कहां अचता

३ - दसें दहन 'मुख' बीच नैनां कि मोती थाल में कुलते
लटा छुटतन उपर यूं है भुनक ज्यों नीर पर झुलते

४ - मद इश्क में पिया सो चड़या है असर मुजे
सुद अक्ल, फ़हम छीन किया बेखबर मुंजे

५ - ताक़त नहीं दूरी की अब तू बेग आ मिल रे पिया
तुज बिन मुंजे जीना बहुत होता है मुश्किल रे पिया

६ - जिस यार कूं मैं मँगती हूँ वो यार कहाँ है
सर सूं सकी चल जाती, वले ठार कहां है

७ - प्यारा सेज पर आया, प्यारा जिऊ ते प्यारा हो
बिरह मुंज दिल में ते निकल्या हो जिऊ ओसास बारा हो

८ - तुज मुख देख के दरस का थो सूरज सुदरसनी है
तुज नूर झमकने ते सब जग में रोशनी है

९ - ऐ माह ! शाम हुई सहर तुझ फ़िराक़ ते
काल वस्ल देखू, जाऊं किधर तुझ फिराक़ ते

१० - सहेली ! यार बिछड्या है मुझे दो बार याद आता
बसर नीं सकती यक तिल मया ने सौ बार याद आता

११ - तजा बास सूं माते हमे, फिर कैफ़ खाना क्या सबब
तन मन जला जोगी हुए फिर राग लाना क्या सबब

१२ - है दिल में तेरा इश्क़ लई, क्यों कर सरेगा देखना
को लग मुझे आलम मने रुस्वा करेगा देखना
१३ - काले बुंदा पड़े हैं अंजो होकर अँखियाँ ते
जाँ हाल में अपस का लिखने क़लम रख्या हूँ
(इस ग़ज़ल का मतला नहीं है।)
१४ - किधां लग मैं अछूं दुख बिछड़ अपने जीवां ते
सबूरी हद ते गुज़री है उरुं कीता रक़ीबां ते

वजही की दस रुबाइयों में से आठ इश्क़िया जज़बात की अक्कासी करती हैं, मसलन :

आशिक़ है जे कोई पंदा से भासी ना
सर हे तलक इस बार में ते जासी ना
क्या काम मना इश्क़ ते करते हैं उसे
हरगिज़ किसी के किये मने वो आसी न।

इस बाग़ मने आज जो आई है परी
यक दिल सती जिऊ तुज सूं लगाई है परी
भोत धात इस सात मजलिस कूं सिंगार
ऐ शाह ! तुजे बेग बुलाई है परी।

इस रुबाई की प्रकृति लोकसाहित्य की प्रकृति है जिसमें दास्तानी रंग झलकता है :

तुज याद बिना होर मुजे काम नहीं
निस जागते जाती है दिन आराम नहीं
मैं तो तुजे मँगती अदख जीऊ ले
तू क्यों मुझे मँगता सू कुच फाम् नहीं।

'सबरस' की रुबाई में इश्क़ का ज़िक्र इन शब्दों में किया गया है :

देता है नफा पे रहता है जिस रे अलग
दो में ते इसे जान न दे तिसरे अलग
गर पिऊ सूं मिल पिऊ चे होने मंगता है
तो याद कर निस पिऊ कूं अपस बसरे अलग।

वजही के उपलब्ध दो मर्सिए ग़ज़ल फ़ार्म में हैं। डॉ. रशीद 'मूसवी', वजही को क़ुतुबशाही दौर का पहला मर्सिया निगार शायर क़रार देती हैं। फिर भी उनका ख़्याल है कि शाह बुरहान उद्दीन 'जानम' ने वजही और मुहम्मद क़ुली से पहले ही मर्सिया कहा था।

वजही के दोनों मर्सिए संवेदना और शिल्प के स्तर पर एक-दूसरे से बहुत भिन्न हैं। पहला मर्सिया (कुतुबखाना सालारजंग) एक भिन्न काफ़िये की बैत लिखने के बाद बग़ैर मतले के ग़ज़ल के फ़ार्म में है। दकन के मर्सियागो शायर कभी-कभी ऐसे प्रयोग करते देखे गये हैं। इस मर्सिए की भाषा बहुत सहज और बयान का अंदाज़ बहुत बेतकल्लुफ़ है। वजही जैसे शायर से दृष्टि और कला की जिस ऊँचाई की अपेक्षा की जा सकती है, वह इस मर्सिए में नज़र नहीं आती। सभव है कि मर्सिए के तात्कालिक उद्देश्य के कारण वजही ने इस फ़ार्म को अख्तियार किया हो। इस मर्सिए के कुछ शे'र देखिए :

हुसैन का ग़म करो अज़ीज़ां !
अंजो नैन सूं झड़ो अज़ीज़ां !
बना जो अव्वल हुआ है ग़म का अर्श, गगन होर धरत हिलाया
मुहब-ए-दिलां को अजल का साक़ी, प्याले ग़म के सू भर पिलाया
यो क्या अंदेशा अंदेश कीता फ़लक शहां पर सितम खुदाया
हुसैन पे यारां ! दरूद भैजो कि दीन का यो दिया जलाया
तुमारे 'वजही' कों या इमामां नहीं तुमन बिन सू इसकूं साया

'वजही' का दूसरा मर्सिया सोच की नवीनता और शिल्प-सौंदर्य की बेहतरीन मिसाल है। इस मर्सिए से इस बात का भी अनुमान होता है कि दक्षिण में औरतें मातम की सभाएँ करती थीं। डॉ. मोहम्मद चिराग़ अली, 'वजही' के इस मर्सिए को 'मर्सिए की तौहीन' करार देते है। हालांकि वे इस बात से सहमति व्यक्त करते है कि 'वजही' के इस मर्सिए में स्पष्ट तौर पर यह बताया गया है कि जो औरतें व्यभिचारिणी हो जाती थीं उन्हें मातम के पवित्र आवरण में अपनी अदाएँ दिखाने और पुरुषों को रिझाने का अवसर मिल जाता है। यह संभव है कि मातमपुर्सी की रस्मी सभाओं में समान रूप से शिरकत की आज़ादी के कारण कामुक स्त्री पुरुषों को परस्पर मेल-मिलाप करने का अच्छा अवसर हाथ आ जाता हो। और भी, गोरे रंग, काले लिबास और बल खाती अलकों का सौंदर्य पुरुषों को आकर्षित कर लेता हो। लेकिन इन स्थितियों के वर्णन की जगह मर्सिया नहीं है।

मर्सिया 'इमाम दर मुक़ाम रामकली' के कुछ शे'र ये हैं :

गोरी न काली पर बंदी बैठी है ज्यूं कालंदरी
काली लटाँ, काली भवाँ काली गले में गुल सिरी
जुल्फाँ दो सर गिरदान हो, दो तरफ पैदाँ रवा परी
मरते हैं अहां घूँघरू, मुकड़े ने पकर्या थर थरी

छाती अलावा कर सकी, जोबन दो शर्बत के घड़ाँ
हातां दो नोशद्दे अहें, मातम अजब सुंधर करी
टुकड़े दसन ना बात के, तिल काली ख़शख़श, लब खजूर
आशूर[1] का यो नारेज़ा इशाक़ ख़ातिर धन करी
यो नारेज़ा[2] आशूर में, आँखियां सूं खाने का अहे
हातां सूं मूं में बाने का नीं है क़ज़ा यूं जिद करी
मातम कूं सब सिंगार कर, बोला 'वजीही' गुन उत्तम
किस सर पर किन ने किया, यूं तबा[3] की ज़ोर आवरी

'वजही' एक रंगीले बादशाह का रंगीला दरबारी शायर था, जीनियस था। मुहम्मद कुली के दौर की रंगीनियों का सुंदर चित्रण इस मर्सिए मे है। मक्ते से साफ़ जाहिर होता है कि 'वजही' शृंगार रस की कविता रच रहा है। जिसका उद्देश्य मातम मनाना नहीं फ़न्ने-शायरी के साथ ज़ोर आज़माना है, कला का प्रदर्शन करना है। आशूर के दिन जो नानरेज़ा (एक मिठाई) बाँटी जाती है वह भी इस कविता में शृंगार से भरपूर है। अर्थात् हसीना के दाँत मिसरी के टुकड़े, तिल काली ख़शख़श और उसके होंठ खजूर हैं। लेकिन अगले ही शे'र में 'वजही' कहता है, "लेकिन यह नानरेज़ा आँखो से खाने का है, हाथों से मुँह में डालने का नहीं"। अतएव यह कविता एक मातम मनाने वाली सुंदरी का मोहक चित्र है। इसको मर्सिए की तौहीन समझना 'वजही' के साथ ज़्यादती है।

'वजही' की उपलब्ध चौदह ग़ज़ला में रेख़्ती का रंग भी मौजूद है। 'वजही' के समकालीन शायर मुहम्मद कुली और 'ग़व्वासी' वगैरह के यहाँ भी यह रंग उभरता है। नसीरुद्दीन हाशमी ने सैयद मीरां हाशमी को, जो जन्मांध था और अली आदिलशाह सानी (१६५९ से १६७३ ई.) के दौर में मौजूद था, रेख़्ती का आविष्कर्ता ठहराया है। लेकिन डॉ. हफ़ीज क़तील ने 'दीवाने-ए-हाशमी' की भूमिका में इसका खंडन किया है। आग़ा हैदर हसन, कौसर चाँदपुरी और तमकीन क़ाज़मी ने हाशमी बीजापुरी को ही रेख़्ती का प्रथम प्रयोक्ता शायर माना है। बदी' हुसैनी के अनुसार, अब तक हुए शोध के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बहमनी दौर के रेख़्तीगो शायर 'लुत्फ़ी' से पहले किसी दकनी शायर की रेख़्ती नहीं मिलती। फिर भी 'लुत्फ़ी' को पहला रेख़्ती गो शायर नही माना जा सकता। क्योंकि ऐतिहासिक शून्य के बावजूद इसका सिलसिला अमीर ख़ुसरो तक पहुँचता है। साहब 'ख़ज़ीनत-उल-उलूम' ने ख़ुसरो को ही इस तरीक़े का पहला प्रयोक्ता माना है। गर्ज़ यह कि रेख़्ती की यह परंपरा 'वजही' की ग़ज़ल में भी मौजूद है।

१. मूहर्रम की दसवीं तारीख २. सूखे मेवों का तबर्रुक ३. कविता

वजही के समकालीन उर्दू शायर

इस युग के अधिकांश शायरों का जीवन-वृत्त अज्ञात है। जिन शायरों का ज़िक्र मिलता है, वे निम्नलिखित हैं :

१. फ़ीरोज़-कुतबदीन फ़ीरोज़ बीदरी, इब्राहीम कुतबशाह के दौर का शायर है। उसकी मस्नवी परतनामा (१५६५ से पूर्व की रचना) जिसे 'तौसीफ़ नामा' नाम से भी जाना जाता है, खोज में प्राप्त हुई है।'परतनामा' में हजरत सैयदना अब्दुल क़ादर जीलानी के जीवन का वर्णन है। फ़ीरोज़ ने हज़रत जीलानी के अलावा अपने मुर्शिद शेख़ इब्राहीम मख़्दूम जी की भी मदह (प्रशंसा) की है।

२. महमूद -- इस युग का मशहूर शायर और उस्ताद-ए-फ़न है। महमूद की कोई रचना नहीं मिलती। मुहम्मद कुली तो सैयद महमूद को ज़हीर फ़ारयाबी और अनवरी के स्तर का शायर समझता था।

३. ख़याली – मुल्ला ख़्याली के संबंध में भी हमें मालूमात नहीं है। यह अपने दौर का मशहूर और खुशहाल शायर था। इसने एक दोमंज़िला खूबसूरत मस्जिद गोलकुंडा के क़िले के बाहर अपने हरे-भरे बाग़ में बनवाई थी, जो अब भी मौजूद है।

४. मा'नी –उर्दू का पहला साहिबे दीवान शायर। मुहम्मद कुली कुतबशाह 'मा'नी' कुतबशाही ख़ानदान का पाँचवाँ बादशाह, (१५८० से १६१२ ई.) मुग़ले-आज़म जलालुद्दीन अक्बर का समकालीन, शहर हैदराबाद का निर्माणकर्ता, हिंदू-मुसलमान एकता का अलमबरदार, दकन का जहाँगीर, शाहजहाँ और जान-ए-आलम पिया था। उसकी वृहद् ग्रंथावली को उसके भतीजे और दामाद मुहम्मद कुतबशाह ने १६१६ ई. के संग्रहीत किया और पद्य-बद्ध भूमिका लिखी। डॉ. मुहीउद्दीन क़ादरी 'ज़ोर' ने इसे संपादित किया और १९४० ई. में हैदराबाद से प्रकाशित किया। इसमें पचास हज़ार शे'र शामिल हैं।

मुहम्मद कुली की संपूर्ण शायरी में रंगीनी और भाव-तरलता है। ग़ज़लों में जहाँ फ़ारसी रंग की पैरवी में रिवायती रंग मिलता है, वहाँ खालिस हिंदी शैली और हिंदी-फ़ारसी रंगों की युगपत् विद्यमानता भी है। जो पारंपरिक फ़ारसी से ज्यादा प्राणवान है। 'मानी' का यह विशिष्ट रंग है। मुहम्मद कुली की शायरी भोग-विलास की ही शायरी है।

५. ज़िल्लुल्लाह –सुल्तान मुहम्मद कुतबशाह ज़िल्लुल्लाह (१६१२ से १६२६ ई.) का कुल्लियात (समग्र रचनाएँ) अभी उपलब्ध नहीं हुआ है। अलबत्ता उसका फ़ारसी कलाम सिलसिला-ए-यूसुफ़िया की पुस्तक 'कलामुल्मलूक' (संग्रहकर्ता-मीर सआदत अली रिज़्वी) के पृष्ठ ५७ से ११२ पर सन् १९३८ ई. में प्रकाशित हो चुका है। अब्दुल जब्बार ख़ां मल्कापुरी ने अपनी पुस्तक 'तज़्किरा-ए-शुअरा' में जो शायरी का नमूना दिया है वह दरअसल मुहम्मद कुली का ही कलाम है। मुहम्मद कुली की समग्र रचनाओं

का पद्य-बद्ध विवरण ही उसके कलाम का नमूना है।

६. अब्दुल्लाह –सुल्तान मुहम्मद कुतबशाह का बेटा और उत्तराधिकारी सुल्तान अब्दुल्ला कुतबशाह (१६२६ से १६७२ ई.) भी शायर था और 'अब्दुल्ला' उपनाम से लिखता था। अब्दुल्ला कुतबशाह ने जगदगुरु इब्राहीम आदिलशाह की 'किताब नौरस' के जवाब में संगीत से संबंधित उर्दू में एक किताब लिखी थी जो अब अनुपलब्ध है। सिलसिला-ए-यूसुफ़िया का अंक-९ 'दीवाने-अब्दुल्ला कुतबशाह' है जिसे सैयद मुहम्मद ने संग्रहीत किया है। यह प्रकाशित हो चुका है। लेकिन रदीफ़ 'से' तक की ग़ज़लें और एक मर्सिया है।

अब्दुल्ला भी अपने नाना मुहम्मद कुली की तरह रंगीन मिज़ाज और ऐश तलब था और नबी और अली के सदक़े में ऐश की दाद देता था :

अब्दुल्ला अली वली के सदक़े
माशूक़ सूं ख़त मदाम लेता

७. ग़व्वासी –मुल्ला वजही का प्रतिद्वंद्वी मुल्ला ग़व्वासी, सुल्तान अब्दुल्ला कुतबशाह के दरबार में न सिर्फ़ मलिकुश्शुअरा (कवि-सम्राट) था बल्कि राजदूत होने का सम्मान भी उसे प्राप्त था। यही वजह है कि मुल्ला निज़ामुद्दीन अहमद शीराज़ी ने 'हदीक़तुलसलातीन' में इसका ज़िक्र बड़े आदर के साथ किया है। नुसरती ने मस्नवी 'गुलशने-इश्क़' में, इशरती ने अपनी मस्नवी 'दीपक पतंग' में और ग़ासी बीजापुरी ने भी अपनी मस्नवी 'रियाज़े-ग़ौसिया' में ग़व्वासी की तारीफ़ की है। यहाँ तक कि ग़व्वासी की ख्याति दिल्ली तक पहुँची और मीर हसन ने अपने तज़्किरे में ग़व्वासी का ज़िक्र भी शामिल किया।

ग़व्वासी की दो मस्नवियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। पहली 'सैफ़-उल-मुलूक बदी-उल-जमाल' (१६१६ ई.) और दूसरी 'तूती नामा' (१६४० ई.) मौलिक नहीं है। फ़ारसी का अनुवाद हैं। ग़व्वासी की तीसरी मस्नवी 'चंदा और लोरिक' जिसका दूसरा नाम 'मीना सतवंती' भी है, प्रकाशित हो गयी है। इदारा-ए-अदबियात उर्दू हैदराबाद की ओर से इसकी समग्र रचनाएँ भी प्रकाशित हो चुकी है। कई विद्वानों ने गव्वासी को बहाउद्दीन नाम से भी पुकारा है। लेकिन अब तक इसकी पुष्टि नहीं हुई है।

डॉ. 'ज़ोर' के अनुसार ग़ज़लों के बाद ग़व्वासी की समग्र रचनाओं में से पच्चीस क़सीदे उल्लेखनीय हैं। इसलिए कि इतने ज़्यादा इतने विस्तृत और उम्दा क़सीदे किसी दकनी शायर के अब तक उपलब्ध नहीं हुए हैं। गुण और मात्रा की दृष्टि से वर्तमान जानकारी की हद तक, ग़व्वासी दकन का सबसे बड़ा क़सीदा निगार साबित होता है।

८. अहमद – शेख़ अहमद की मस्नवी 'लैला मजनूं' की एक अधूरी लेकिन सचित्र प्रति प्रो. हाफ़िज़ मेहमूद शेरवानी को प्राप्त हुई थी। इसमें सिर्फ़ १५४० शे'र

सुरक्षित हैं। मौलवी नसीरुद्दीन हाशमी ने इस मस्नवी को सुल्तान अब्दुल्ला कुतबशाह के आदेश पर लिखी बताया है। जबकि 'लैला मजनूं' के शे'रों में यह शे'र भी मौजूद है :

मुहम्मद कुली कुतबशाह-ए-शाहां
जिसे चरन सेवक शाहाना जहां

इससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि हाशमी साहब को भ्रम हुआ है।

हाशमी साहब ने अहमद की दूसरी मस्नवी 'मुसीबत अहले बैत' बताई है लेकिन 'ज़ोर' ने इस बात का खंडन किया है।

९. आजिज़ – 'उर्दू-ए-क़दीम' और 'अलीगढ़ तारीख़ उर्दू' में 'आजिज़' का ज़िक्र नहीं है। सिर्फ़ नसीरुद्दीन हाशमी ने 'दकन में उर्दू' में इसका ज़िक्र किया है।

आज़िज की मस्नवी 'लैला मजनूं' के बाद यह दूसरी 'लैला मजनूं' है जिसकी एक हस्तलिखित प्रति सालारजंग के पुस्तकालय में मौजूद है।

१०. कुतबी – मुल्ला कुतबी, सुल्तान अब्दुल्ला कुतबशाह के समकालीन हैं। उन्होंने शेख यूसुफ़ देहलवी की फ़ारसी रचना 'तोहफ़ातुल निसाह' का १६३५ ई. में दकनी में अनुवाद किया। कुतबी का दूसरा उपनाम 'राजी' था।

११. सुल्तान – एक सूफ़ी बुजुर्ग थे। वे मीरांशाह के मुरीद और खलीफ़ा थे। उनके कलाम में पुख़्तगी है, नयापन है, ज़बान पर कुदरत है। उनकी समग्र रचनाएँ कुतुबखाना आसफ़िया, और इदारा-ए-अदबियात के कुतुबखाने (पुस्तकालय) में मौजूद हैं।

इन शायरों के अलावा खुदावंद खुदा नुमा, शेख अब्दुल्ला, 'जुनैदी' भी एक शायर था। डॉ. ज़ोर के अनुसार वह अब्दुल्ला कुतबशाह के युग का शायर था और अली उसका नाम था (उर्दू शह पारे)। मगर नसीरुद्दीन हाशमी ने उसका नाम अहमद बताया है। उसकी मस्नवी 'माह पैकर' (१६५४ ई.) मशहूर है। बुलाकी की 'मे'राजनामा' (१६५५ ई.) फ़ारसी से दकनी में अनुवाद है। इब्न निशाती की 'फूल बन' फ़ारसी किस्सा 'बसातीन' का अनुवाद है। और तबी की मस्नवी 'बहरामो गुल अंदाम' (१६७७ ई.) मशहूर है। चर्चित तमाम शायरों में ग़्वासी ही वजही की टक्कर का शायर था। लेकिन वजही का दीवान जब तक नहीं मिल जाता, इनकी तुलना संभव नहीं।

गार्सां द तासी ने अपने वृत्तांत में वजही की एक मस्नवी 'माह सीमा व परी रुख़' का भी ज़िक्र किया है। लेकिन अब वह अप्राप्य है।

अतएव, कुतबशाही दरबार का कवि-सम्राट मुल्ला असद उल्लाह 'वजही' एक महान शायर और कलाकार था, इसमें कोई दो राय नहीं। लेकिन जब तक उसकी समग्र रचनाएँ प्राप्त नहीं हो जातीं, उसकी सर्जनात्मक प्रतिभा की कोटि निर्धारित नहीं की जा सकती।

वजही की फ़ारसी शायरी

वजही ग्यारहवीं सदी हिजरी के आरंभिक दौर का शायर था। यह वह ज़माना था जबकि भारतीय वातावरण फ़ारसी शे'र-ओ-नग़्मा से गूँज रहा था। देहली, बीजापुर और गोलकुंडा के दरबारों में फ़ारसी साहित्य को बड़ा प्रोत्साहन और संरक्षण दिया जा रहा था। बाबा फ़ुग़ानी के नये रंग और नये ढंग से इस दौर के तमाम शायर प्रभावित थे। धनी वर्ग के जीवन में इन दिनों ऐश्वर्य और सुख-सुविधाएँ बढ़ रही थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि तत्कालीन शायरी मे 'सादी' और 'हाफ़िज़' के दौर की सी सहजता और मार्मिकता ग़ायब होती गयी। इसकी जगह चमत्कारप्रियता, जटिलता और भाषा-शिल्प के नये-नये प्रयोगों ने ले ली। जिसने फ़ारसी ग़ज़ल को एक नये रूप-रंग से अलंकृत कर दिया था। नज़ीरी, उर्फ़ी, फ़ैज़ी, तालिब आमली, ज़हूरी, मलिक क़ुमी और अन्य फ़ारसी शायरों ने अपनी साहित्य-साधना के माध्यम से भारत में एक नयी साहित्यिक संस्कृति की बुनियाद रखी। 'वजही' भी इसी दौर का शायर था। इसे फारसी पर असाधारण अधिकार था।

लेकिन जिस परिवेश में पला-बढ़ा वहाँ एक नयी भाषा और साझी राष्ट्रीयता की कल्पना उभर रही थी। मुहम्मद कुली कुतबशाह के शासन-काल में विशेष रूप से इस नयी भाषा और नयी संस्कृति का विकास हुआ। मुहम्मद कुली का व्यक्तित्व दकन की साझी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। उसने दखनी उर्दू में शायरी की और साहित्य के इतिहास मे उर्दू का पहला साहिबे दीवान शायर कहलाया। उसके दरबार से जितने शायर और अदीब जुड़े थे इनमें से अधिकांश इराक़ और ईरान से आकर दखन में बस गये थे। इनमे जो नये बसे हुए थे वे फ़ारसी जबान को ही अपनाये रहे लेकिन जिन ख़ानदानो को दकन में रहते हुए कुछ मुद्दत गुज़र गयी थी, उन्होंने दकनी उर्दू में भी महारत पैदा कर ली थी। वजही का संबंध बाद के समूह से था। उसके बाप-दादा ईरानी मूक के थे। लेकिन वह खुद दकन में पैदा हुआ। यहाँ की आबो-हवा ने उसका पालन-पोषण किया और इसी अंचल की संस्कृति में रच-बस कर उसने शायरी की तरफ़ तवज्जो दी। दकनी उर्दू मानों कि उसकी मातृभाषा थी। लेकिन अपने पूर्वजों के वतन की भाषा से भी वह उदासीन नहीं हुआ। फ़ारसी भाषा की बारीकियों से अच्छी तरह वाकिफ़ था। फ़ारसी के उत्कृष्ट साहित्य को उसने गहराई से पढ़ा था। वह अपने फ़ारसी कलाम में फ़ारसी के उस्तादों जैसे हाफ़िज़, खुसरो, हसन और कमाल आदि का ज़िक्र भी करता है :

ख़यालात 'कमालो' नाज़ुकी हाय 'हसन' बंद अस्त
कि सोज़-ए-ख़ुसरो' ओ अल्फ़ाज-ए-ह्राफ़िज़" दर सुख़न दारम

वजही ने अपनी फ़ारसी ग़ज़लों में अपने दौर की पारंपरिक प्रवृत्ति की अवहेलना नहीं की है। शृंगारिक प्रेम, शराब, अलकें और कपोलों पर बहुत लिखा है। फिर भी, सोच की नवीनता और शिल्प के अच्छे नमूने उसकी ग़ज़लों में मौजूद हैं। कुछ शे'रों का आस्वाद लीजिए :

हदीसे ख़्वाहिशे दिल बरज़ुबां हरगिज नमी आयद
सिया गश्तस्त रूए इज्ज़ अज़रंग-ए-तग़ाफ़ुल हा[1]
इमरोज़ गुफ़्ता कि बयाबम बख़्वाबे शब
दरदीदा ख़्वाब नेस्त कि आई बख़्वाबे मा[2]

शराब भी वजही का रुचिकर विषय है :

मस्त इश्क़म शराब राचा कुनम ?
मन कि हुशियार मी शोम ज़ शराब[3]
शुदम मलूलो ज़ साक़ी प्याला मी तलबम
कि सेहत अस्त बा बीमारी-ए-ख़ुमार शराब[4]

सोच का नयापन :

गुले ख़ुशरंगे नज़्मे ख़ुद बा बज़्मे दानिश आवर्दम
कि गिर्दों चूं रुख़े-ए-ख़ूबां क़ुबूले ख़ातिरे दिल हा[5]

बुतपरस्ती :

बकुंजे ख़ानकह बुत मी परस्तम
शिकस्त दीं ज़ ख़िर्क़ा पोशी मा अस्त[6]

---

१. दिल की ख़्वाहिशों की बात ज़ुबान पर हरगिज़ नहीं आती। तेरी उपेक्षा ने मेरी ख़्वाहिशों का रंग स्याह कर दिया है।

२. आज तूने मुझसे कहा है कि तू मेरे ख़्वाब में आयेगा। लेकिन मेरी आँखे बंद ही नहीं होती है तो ख़्वाब कैसे देखूंगा?

३. मैं तो इश्क़ की मस्ती में खोया हुआ हूँ। शराब पीकर तो मैं होशियार हो जाऊँगा। इसलिए शराब क्या करूँगा?

४. साक़ी मुझे शराब का प्याला और दे क्योंकि नशा टूटने की बीमारी का इलाज शराब ही है।

५. मैं अपनी शायरी का ख़ुशरंग फूल दानिशों (विद्वानो) की महफ़िल में तो आया हूँ ताकि वे भी इस फूल की ख़ुशबू को क़ुबूल कर सकें।

६. सूफ़ी गुदड़ी या कंबल ओढ़े रहते हैं, मैं क्यों ओढूँ? इसे ओढ़ने में दीन की हार छुपी हुई है।

उसासे और दीवार का साया :

आतिशे दोज़ख फ़ज़ाइदा आहे आतिश बारे मा
राहते फ़िरदौस बख़्शद साया-ए-दीवारे मा[1]

वेदना और विकलता :

वजीहा सोज़ो-गुदाज़ अस्तकारे मा शबोरोज़
कि सोख़्त अख़्तरे बख़्त्म ज़ आफ़ताबे ज़वाल[2]

दुनिया की दौलत-ओ-दीन की दौलत :

दर दौलते दीं कोश कि ईं दौलते दुनिया
चूं कैफ़ियत बादा व चूं ज़िल्ले सहाबस्त[3]

खुदा की याद :

दर याद-ए-खुदा बाश बहरहाल कि बाशी
कीं यक खुख़नम हामिले सद जिल्दे किताबस्त[4]

अधूरे प्रेम की कहानी :

आशिक़ां रा तमाम हैरां कर्द
क़िस्सा-ए-इश्क़े ना तमामे 'वजीह'[5]

वजही अपने समय का पैगंबर और शे'र उसकी अलौकिक सृष्टि

मैजिज़ा शे'र अस्त व मा पैग़ंबर वक़्त खुदीम
काफ़िर अस्त आँकस कि शक आरदबरीं ऐजाज़ मा[6]
गुफ़्ता अम मानी हमा कुरान
हर्फ़म इसरारे सद हज़ार किताब[7]

---

१. हमारी आह की आग जहन्नुम की आग को और भड़का देती है लेकिन हमारी दीवार का साया दूसरो को जन्नत का आराम देता है।

२. ऐ वजही, हमारा काम दिन-रात दुःख में पिघलना था। मेरे भाग्य के सितारे को विपत्ति के सूरज ने जला दिया है।

३. आख़िरत या दीन की दौलत को कमा। दुनिया की दौलत तो शराब या बादल के साये की तरह है।

४. तू खुदा की याद मे अपने आपको डुबाये रख। सभी धर्मग्रथो मे यही एक बात कही गयी है।

५. वजही के इश्क़ के नातमाम क़िस्से ने तमाम आशिकों को हैरत में डाल दिया है।

६. मेरी शायरी एक चमत्कार या अलौकिक कार्य है और मैं अपने वक़्त का पैगंबर हूँ। जो इस बात पर यक़ीन नहीं लाता वह काफ़िर है।

७. मैंने अपने शैरों में कुरान के मानी भर दिये हैं। मेरा एक हर्फ़ हज़ार किताबों के बराबर है। इन फ़ारसी शे'रो के अनुवाद दिनांक २३-४-९० को श्री मख़्मूर सईदी से हुई बातचीत पर आधारित हैं।

वजही के फ़ारसी दीवान की एक दुर्लभ हस्तलिखित प्रति सालारजंग पुस्तकालय, हैदराबाद में सुरक्षित है। इसकी खोज का श्रेय प्रो. अख़्तर हसन को है। मैंने वजही के फ़ारसी दीवान का संग्रह 'आशोबे-दिल' के नाम से संपादित किया है। जो अभी तक अप्रकाशित है। यह नाम मैंने वजही के इस शे'र से लिया है :

मादरे अंदेशा तिफ़्ले शे'र मी ज़ायद 'वजीह'
नाम ओ आशोबेदिल या दर्द मंदी मी नहम[1]

वजही के समकालीन फ़ारसी शायर

कुतबशाही खानदान से पहले बहमनी खानदान की भाषा फ़ारसी थी। इसलिए दक्षिण भारत में लगभग दो सौ बरस तक फ़ारसी भाषा और साहित्य का दौर-दौरा रहा। इब्राहीम कुतबशाह के दौर के निम्नलिखित शायरों और गद्यकारों का उल्लेख मिलता है :

१. हाजी अब्र क़वी, २. क़ासमी तब्सी, ३. मीर तक़ी उद्दीनुल मारूफ बा मीर शाह, ४. माजुद्दीन वफ़ा ख़ाँ, ५. नईमुद्दीन शाह नैमतुल्लाह वली, ६. मीरक मुईन सब्ज़बारी और ७. मिर्जा वस्ली।

मोहम्मद कुली के दौर के मशहूर शायर ये है :

१. मलिकुश्शुअरा असद उल्लाह वजही, २. मिर्ज़ा मुहम्मद अमीन मीर जुम्ला शहर सतानी रूहुल 'अमीन', ३. हुसैन बिन अली उल फ़र्सी, ४. पेशवा-ए-सल्तनत मीर मुहम्मद मोमिन, ५. कामी शीराज़ी, ६. शरीफ़ कासानी, ७. मीरक मुईन सब्ज़बारी, ८. मसीहा काशी, ९. मुहसिन हम्दानी, १०. वहशी काशी, ११. फ़िक्री, १२. मुंसिफ, १३. सिराजुद्दीन आरिफ़, १४. मीर हसन अस्करी, १५. फ़िक्र राज़ी, १६. मीर मोमिन अदाई यज़्दी, १७. सफ़ी शेख़ मुहम्मद शीराज़ी, १८. गुल मौलाना अली गुल अस्तराबादी, १९. हाजी अब्र क़वी मज्दुद्दीन मुहम्मद फ़र्ज़ंद मीर मुहम्मद मोमिन।

सुल्तान मुहम्मद कुतबशाह के दौर के शायरों और चिंतको मे इब्न ख़ातून, मौलाना हुसैन आमली, शेख़ ज़ाफर अली, मुल्ला अब्दुलहकीम, सैयद कमालुद्दीन माजिंदानी, मीर कुतबुद्दीन नैमतुल्लाह, निज़ामुद्दीन अहमदुल सादी शीराज़ी, तक़ी उद्दीन बिन शे'ख सदरुद्दीन अली सआदत पनाह सैयद मुहम्मद मुर्तुज़ा के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। मुहम्मद कुली के दौर के चिंतकों और शायरों मे मीर मुहम्मद मोमिन अस्तराबादी, मीर मज्दुद्दीन और शरीफ़ काशानी जीवित थे।

मुहम्मद कुतबशाह के दौर में हैदराबाद आने वाले शायरों में इशरती यज़्दी, अली गुल अस्तराबादी, मीर मोमिन अदाई यज़्दी, मुहम्मद अमीन बिन मुहम्मद शरीफ़ अस्तराबादी, क़बाद बेग कोकबी, साली अर्दस्तानी, सैयद मुराद अस्फ़हानी, हकीम रुकनाकाशी फ़ारसी के विख्यात शायर थे।

---

१. ऐ वजही! फ़िक्र (चिंतन) मां है और शे'र इसका बच्चा है। मैंने शे'र के इस बच्चे का नाम आशोबे दिल (दिल की तड़प) रखा है।

इब्राहीम कुतबशाह के ज़माने में 'आतिशख़ाना' नाम से शायरों, लेखकों और विद्वानो की जिस अकादेमी का ज़िक्र मिलता है उसकी साहित्यिक सरगर्मियाँ अब्दुल्ला कुतबशाह के युग में ताज़ा हो गयीं। इतिहासकारो का कहना है कि 'आतिशख़ाना' मे रात-रात भर शे'रो-सुख़न की महफ़िलें गर्म रहती थीं और साहित्यिक मसलों पर विचार-विमर्श किया जाता था।

अब्दुल्ला कुतबशाह का उस्ताद, मुल्ला हुसैन आमली महान शायर और विद्वान, उसका दामाद सैयद निज़ामुद्दीन अहमद, गणित व ज्योतिष का ज्ञाता, सैयद अर्दस्तानी, बहाउद्दीन आमली के शार्गिद और मीर मुहम्मद मोमिन के फ़ैज़ याफ़्ता मुहम्मद इब्न-खातून आमली, शेख अहमदुल हिंदी और शाह क़ाजी जैसे मनीषी कुतबशाही दरबार से जुड़े थे।

इस दौर के मशहूर फ़ारसी शायर निम्नलिखित हैं :

१. निज़ामुद्दीन अहमद साऊदी (हदीक़तुलसलातीन के लेखक), २. मुहम्मद हुसैन यज़्दी, ३. काज़िम हुसैन करीम (अप्रसिद्ध शायर), ४. अब्दुल्ला अमानी, ५. मुहम्मद अली जब्ल रूदी, ६. उल्फ़ती सावजी, ७. फ़र्जुल्लाह शोस्तरी, ८. मुहम्मद शाह जामी (कोकशास्त्र का फ़ारसी काव्यानुवाद), ९. हाजी अब्दुल अली तालकानी (गफ्फ़ार), १०. मीर रज़ी दानिश मशहदी, ११. इब्न अमाद रोज बहान अस्फहानी, १२. रौनक़ी हम्दानी, १३. क़िस्मत मशहदी, १४. सालिक यज़्दी, १५. खल्क़ी शोस्तरी, १६. आक़ा मेहदी 'बयान' अस्फ़हानी, १७. मिर्जा हम्ज़ा अस्तराबादी, १८. रजा कुली बेग, १९. आज़र सासनी मुवीद (दबिस्तान), २०. सईद काशानी सरमद, २१. शेख मुईन उद्दीन मोहम्मद 'ओहदी', २२. मीर अबू तराब 'फ़ितरत' मुशहदी।

बहार खुरासानी ने पूरे हज़ारसाला फ़ारसी साहित्य को चार हिस्सों में बाँटा है जिनके नाम हैं : १. सबक-ए-खुरासानी, २. सबक-ए-इराक़ी, ३. सबक-ए-हिंदी ४. दौरा-ए-बाज़गशत।

खुरासान वालों के मस्तिष्क में इस्लाम से पूर्व का सामाजिक परिवेश था इसलिए दरबारों के शिष्टाचार और परंपराओं का वे पूरा ध्यान रखते थे। साहित्य पर इसका प्रभाव यह हुआ कि क़सीदागोई को, जिसे इस्लाम से पूर्व के युग में चापलूसी कहा जाता था, को नये सिरे से विशेष महत्त्व दिया जाने लगा। कविता की यह प्रवृति 'सबक-ए-खुरासानी' के नाम से जानी जाती है।

ग़ज़नवियों के पतन के बाद जब सल्जूक़ी वंश सत्ता में आया तो उन्होंने अपनी सरगर्मियों के लिए खुरासान की तुलना में आज़रबैजान को उपयुक्त समझा। भाषा के मुहावरे के मामले में खुरासान के लोग जितने सादगी पसंद थे, इसके विरुद्ध आज़रबैजान

वाले उतने ही मुश्किल पसंद साबित हुए। क्योंकि आजरबैजान और इसके आसपास का इलाका, जे सल्जूकियो के शासनाधीन था, 'इराक् अज्म' कहलाता था। इसलिए इसकी शायरी 'सबक-ए-इराक़ी' के नाम से मशहूर हुई।

सबक-ए-इराकी की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसके शायर और गद्यकार क्लिष्ट शब्द, अरबी की वाक्य-रचना, नयी-नयी उपमाएँ और प्रतीको का कसरत से इस्तेमाल करते हैं। मंगोलो के बाद न सिर्फ सल्जूकियो को बल्कि पूरे इस्लाम जगत् का ऐश्वर्य और वैभव चौपट हो गया। जब दरबार ही न रहे तो भला क़सीदागोई का ज़िक्र ही क्या? लेकिन इस उथल-पुथल के दौर मे भी सबक इराक़ी जीवित रहा। सबक-ए-इराक़ी का सबसे बड़ा शायर 'हाफिज़' हुआ।

इतिहास इस बात का गवाह है कि हुमायू के दौर तक उत्तर भारत में कोई मजबूत शासन की स्थापना नहीं हो सकी। और जब उसने शाह तहमास्प की मदद से इस देश पर आक्रमण किया तो प्रायः आधा ईरान और कुल अस्फ़हान इस देश में उमंड़ पड़ा। 'हाफिज़' के बाद हालांकि लोगों ने फारसी में शे'र कहे मगर जो मानवीय प्रकृति का तक़ाजा खूब से खूबतर की तलाश है, इसकी कमी हमें अकबर के दौर तक नज़र आती है। लेकिन जैसे ही मुगलों की हुकूमत इस देश में सुदृढ़ होती गयी, साहित्य के उपवन मे भी जैसे वसंत आ गया, फूल खिल उठे। यहीं नयी सस्कृति, हिंदू धर्म और जीवन-शैली, वेश-भूषा तथा दर्शन ने फ़ारसी शायरी को एक नयी दिशा दी। इस प्रकार शिल्प को सँवारने के साथ-साथ विचारों पर भी धार रखी गयी। सूक्ष्म और तरल भाव इस दौर की कविता की मुख्य प्रवृत्ति थी। अब प्रेमी ने प्रेमिका के दरवाज़े का कुत्ता बनने से इंकार कर दिया और उसमें आत्मविश्वास और लज्जा जाग्रत हुई। और यही सब बातें 'सबक-ए-हिंदी' की विशेषताएँ है।

वजही के दौर के संदर्भ में हम कह सकते हैं उसका मन हाफ़िज़ के अनुसरण के साथ-साथ नयी राहें और नये विचार तलाश कर रहा था। हाफ़िज़ का प्रसिद्ध शे'र है:

शबे तारीक, बीमे मौज, गर्दाबी चुनीं हायल
कुजा दानिंद हाले मा सुबकसारान-ए-साहिल हा[१]

अब वजही का शे'र देखिए :

शबे तारीक या रोशन 'वजीही' अज़ कुजा गर्दद
कि अफ़गंदंद बर रुख़सार आं दर साया काकुल हा[२]

---

१. रात अंधेरी थी, समंदर में हर तरफ मौजें उमड़ रही थीं, तेज भंवर पड़ रहे थे। जो आराम से किनारे पर खड़े हुए थे, वे क्या जानें कि मैं किस हाल में था?

२. वजही कहता है कि मेरी अंधेरी रात कैसे रोशन हो? उसके काले घने बालों के साये मेरे गालो पर आ गये हैं।

वजही की शायरी फ़ारसी की हिंदी और इराक़ी धारा को जोड़ती है। इसकी धारा में निराशा और दुर्भाग्य का स्वर प्रधान है :

'हाफ़िज़' ज़ दीदा दाना-ए-अश्क़ी हमीं फ़िशां
बाशद कि मुर्ग़-वस्ल कुनद क़स्दे दामे या[१]

मगर वजही की शायरी में अतृप्त इच्छा नहीं बल्कि आशावाद है :

अगर मुरग़ी बदस्त आयद अजब नेस्त
कि दर दामी दर आमद दाना-ए-मा[२]

वजही के सबक-ए-इराक़ी से प्रभावित होने का प्रमाण उसकी शायरी से ही मिल जाता है। वह इस धारा के सबसे ज्यादा मुश्किल पसंद शायर का ज़िक्र यों करता है :

'वजही' जाइ तो बालाई दस्त 'ख़ाकानी' अस्त
कि जेरे हर्फ़ नोश्तन खता बूद मद रा![३]

हालाँकि अमीर खुसरो देहलवी ने बड़े सुख-चैन की ज़िंदगी गुज़ारी मगर क्योंकि वे भी उसी दौर में हुए हैं जिसे सबक-ए-इराक़ी कहा जाता है, इसी कारण उनकी शायरी में भी प्रेमिका से मिलने की दबी-दबी इच्छा दिखाई देती है :

जुबाने यार-ए-मन तुर्की ओ-मन तुर्की नमी दानम
च खुशबूदी अगर बूदी जुबानिश दर दहाने मन

मगर वजही के यहाँ यह पछतावा नहीं है, वह अपने प्रिय को लेकर हर्ष प्रकट करता है :

मालीदा अम अमश्ब बा ज़बान तो ज़बां रा
तर सा ख़त्म अज़ आवे लबे तो लबे जां रा

अफ़सोस कि दक्षिण भारत का यह महान शायर ईरान से दूर होने के कारण एक लम्बे समय तक लोगों की दृष्टि से ओझल रहा। अगर उत्तर भारत के फ़ारसीगो शायरों की तरह जो ईरान जाते रहते थे, वजही भी किसी रूप मे फ़ारसी-भाषी लोगों से घुल-मिल गया होता तो उसकी शायरी इस तरह उपेक्षित न रहती। और आज के शोधकर्ता फ़ारसी शायरी की जिन अज्ञात कड़ियों को खोजने में परेशान हैं, बहुत पहले मिल गयी होतीं। अब वह समय आ गया है कि वजही की फ़ारसी शायरी को प्रकाश में लाकर यह साबित किया जाये कि दक्षिणा शायरी की विविधता की दृष्टि से उत्तर की तुलना में पीछे नहीं रहा।

---

१. 'हाफ़िज़, तू अपनी आँखों से आंसुओं के दानो को यूँ ही गिराता रह। क्या पता एक दिन वस्ल (मिलन) रूपी पक्षी इन्हीं दानों में आकर फस जाये?

२. कोई परिंदा हाथ में आ जाये तो कोई ताज्जुब नहीं। मैंने जाल के नीचे दाने डाल दिये हैं।

३. वजही तेरी जगह 'ख़ाकानी' (फ़ारसी का शायर) के हाथ के ऊपर है। तू अरबी चिह्न मद की तरह है, मद हर्फ़ के ऊपर लगती है, इसे नीचे लगाने से हर्फ़ ग़लत हो जाता है।

६.

पहली गद्य-रचना : 'ताजुलहक़ायक़'

'ताजुलहक़ायक़' के बारे में वजही कहता है :

"यो रिसाला एक दरिया है, हर वर्क़ एक मौज है, हर बात ज्यों मानक मोती।"

अध्यात्म की यह पुस्तक वजही के गद्य का 'सर्वप्रथम चित्र' और 'सबरस' द्वितीय चित्र है। 'सबरस' के चरम-बिंदु तक पहुँचने के लिए वजही को 'ताजुल हक़ायक़' की मंज़िल से गुज़रना ज़रूरी था। 'सबरस' में जो आध्यात्मिक लेख हैं, वे 'ताजुलहक़ायक़' के तराशे हुए हीरे ही हैं। जैसे - खुदा, नमाज़, खुदा की खुदाई, मोमिन, अन अलहक़, अनल इश्क़, तालिब होर तलब, नफ़स, नेकी, फ़क्र, शक होर सब्र, इश्क़ होर इसफ़ान, मैराज, क़तरा होर दरिया, ज़ात होर सिफ़ात, आशिक़ होर आबिद आदि।

'ताजुलहक़ायक़' 'सबरस' के मार्ग में एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। जिसको पार किये बिना वजही को 'सबरस' की रचना संभव नहीं थी।

'कुतब मुश्तरी' और 'ताजुल - हकायक़' में जो अत्युक्ति का स्वर है वह 'सबरस' में आत्म-प्रशस्ति का रूप धार लेता है। वजही के पूर्ववर्ती और उसके समकालीन सूफ़ियों की जितनी आध्यात्मिक कृतियाँ हैं उनमें गर्वोक्ति का स्वर नहीं है और वजही की यह मुख्य विशेषता है। बल्कि सूफ़ियो में इसके विरुद्ध विनय, आत्मदया, अकिंचनता और हीनता की भावना झलकती है। क्योंकि इन कृतियों में सूफ़ियों का संबंध सीधे तौर पर इश्क़-ए-हक़ीक़ी (ईश्वर-प्रेम) से है और इश्क़-ए-हक़ीक़ी का वर्णन ही उनका एकमात्र लक्ष्य है। इसलिए 'स्व' की तो यहाँ गुज़र ही नहीं है। यहाँ तो 'स्व' का विसर्जन है, बेखुदी है। ब्रह्म की अनुभूति का हर्षोल्लास है। यहां 'अहम्' की भावना कहाँ ? यहां अहम् को विदाई देकर ही साधक साधना के पहले सोपान पर क़दम रखता है। इसलिए 'ताजुलहक़ायक़' तसव्वुफ़ (अध्यात्म) और इश्क़-ए-हक़ीक़ी (ईश्वर प्रेम) के विचारों की व्याख्या होने के बावजूद गर्वोक्तियों से भरी हुई है। इन गर्वोक्तियों को पढ़कर यह ध्वनि निकलती है कि 'वह मुल्ला वजही ही हो सकता है जो हक़ीक़त में सूफ़ी नहीं था, एक रिंद-ए-शाहिद बाज़ (सुरा-सुंदरी का प्रेमी) था।' हालांकि 'ताजुल हकायक़' में वह अपने-आप को एक 'रौशन दिल पीर' कहता है।

> "हमीं जागती जोत, रोशन दिल साहब वासल जीवते पीर हैं, साहबे काल (संभाषण) अफ़सुर्दा दिलां के दस्तगीर हैं। हमा सूं एतिकाद दुरुस्त रखो।"

यह भी गर्वोक्ति का एक ढंग है। 'ताजुलहक़ायक़' वास्तव में तसव्वुफ़ के मसलों पर वजही के ज्ञान का एक छोटा-सा साहित्यिक चमत्कार है।

'ताजुल हक़ायक़' तसव्वुफ़ के विषय पर गद्य में लिखी एक पुस्तक है जिसका उल्लेख सबसे पहले मौलवी अब्दुल हक़ ने 'सबरस' की भूमिका में किया था। इस पुस्तक को सबसे पहले डॉ. नूरुल सईद अख़्तर ने १९६९ ई. मे बम्बई विश्वविद्यालय से पी.-एच. डी. की उपाधि के लिए संपादित किया था और १९७० में अलवी बुक डिपो, बम्बई ने इसे प्रकाशित किया।

डॉ. 'ज़ोर' ने 'उर्दू शहपारे' में मीरांजी शम्सुल उश्शाक़ की कृतियों में शामिल किया है और इसका नाम 'सबरस' बताया है। डॉ. रफ़िया सुल्ताना के अनुसार यह 'ताजुलहक़ायक़' है और शाह वजीह उद्दीन (१५०४ से १५७१ ई.) इसके लेखक हैं।

मौलवी अब्दुल हक़, मौलवी नसीरुद्दीन हाशमी, हाफ़िज़ महमूद शेरवानी, जीनत साजिदा, मोहम्मद अकबर उद्दीन सिद्दीक़ी, हाशिम अली, सखावत मिर्ज़ा और नूरूल सईद अख़्तर आदि अध्येताओं ने पुस्तक का 'ताजुल हक़ायक़' और लेखक का नाम मुल्ला वजही बताया है। अलबत्ता डॉ. ज्ञानचंद, डॉ. रफ़िया सुल्ताना से सहमत हैं।

लेकिन वर्तमान शोध ने सिद्ध कर दिया है कि यह पुस्तक 'ताजुलहक़ायक़' है और इसका लेखक मुल्ला वजही है। डॉ. अख़्तर ने अपनी सारी शक्ति वजही को सूफ़ी सिद्ध करने में व्यय कर दी है। लेकिन आश्चर्य है कि उन्हें सबसे बड़ी, अकाट्य, आंतरिक साक्ष्य नहीं दिखाई दी। और वह है – गर्वोक्ति का स्वर जो 'सबरस' के आरंभ और 'ताजुल हक़ायक़' के अंत में मौजूद है। ज़ाहिर है कि 'ताजुलहक़ायक़' का विषय तसव्वुफ़ है और इसकी प्रकृति आत्म-कथा जैसी है। और फिर कोई सूफ़ी कभी अहं और दर्प की बात नहीं करता। किंतु इससे उल्टे 'ताजुलहक़ायक़' में डींग और शेखी का रंग बहुत गहरा है। सन् १६०९ ई. मे मुल्ला वजही और मुल्ला ग़व्वासी का विवाद शुरू हो चुका था। 'ताजुलहक़ायक़' 'कुतब मुश्तरी' के बाद की रचना है पुस्तक के आरंभ में शायद तसव्वुफ़ विषय के सम्मान के कारण गर्वोक्ति से बचाव किया गया है। मगर जब पुस्तक 'रहे खुदा का नाम तम्मत तमाम' की मंज़िल पर पहुँच गयी तो वजही ने गर्वोक्ति की तान उड़ाई जिसका चरम-बिंदु 'सबरस' की भूमिका में मिलता है। ताजुलहक़ायक़ में आत्म-श्लाघा का रंग देखिए :

> "दक्खन की बात कूं नस्र कर, इस क़ायदे, इस कानून सूं आज लग कोई नीं बोलूया। इस बात के बानी हमीं हैं। जो बात भी क़ायदे-कानून सूं ज़हूर पकड़े लग अलम नहीं होती, उस ज़ुबान कूं आरास्ता कर हमीं अलम किये हैं। इस ज़ुबान कूं मैदान में ले आये। ज्यों अरबी ज़ुबान में त्यों फ़ारसी ज़ुबान में त्यों इस ज़ुबान कूं कमाल कूं अपनाकर आलम कूं रिझाये . . . . . हमारा दिल एक जहान है, अब्रे निसियां हैं . . . . .

दायम बरसता, तिलतिल नई रुत होती, मो'जिज़ा[1] है हमारा कलाम, हमीं इश्क के पैगंबर हैं। हमारा दिल जिब्रील है, हमारे दिल में ते वही[2] आती होर इल्हाम। यो रिसाला हमीं दुनिया में एक यादगार रखते हैं . . . . . तालिबान हक[3] कूं इस रिसाले में नयी हासिल नयी सैर तीर[4] है .. . . हमारे कलाम ते हमनां पिछानों। हमीं क्या हैं, किस मुकाम पे अछते हैं, उस मुकाम ते हमना पिछानों . . . . .

अगर तुमना खुदा फुर्सत दे तो हर महीने कूं चौदवीं रात की चंदनी में हमारी दोसी सब दोस्तां मिलकर एक मजलिस करो . . . . . अगर महीने कूं मयस्सर न हो तो साल को रबी उल अव्वल के महीने में एक बार तो हमें ज्यूं फ़रमाए त्यूं सब मिलकर खुशहाली करो।"

यह गर्वोक्ति सबसे सशक्त और अकाट्य प्रमाण है कि 'ताजुलहक़ायक़' मुल्ला वजही की रचना है। और यह आत्मप्रशंसा 'वजही' और 'ग़व्वासी' के आपसी झमेलों का नतीजा है। 'ताजुलहक़ायक़' की गर्वोक्ति इस बात का भी प्रमाण है कि वजही सूफ़ी नहीं था। उसने महज़ तसव्वुफ़ के मसलों को बयान करके अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन ही किया है।

'ताजुलहक़ायक़' और 'सबरस' के सूफ़ियाना विषयों में आश्चर्यजनक समानता है। वजही ने 'ताजुलहक़ायक़' के हीरे को सौ-सौ बार काट कर तराशा है। और इसकी तराश ख़राश की बदौलत गोलकुंडा के जगमगाते हीरे 'सबरस' में सुरक्षित हैं।

'ताजुलहक़ायक़' के अंत में गर्वोक्ति का रंग ही इस बात के सुबूत में पेश किया जा सकता है कि 'ताजुलहक़ायक़' रचना है, अनुवाद नहीं। डॉ. अख़्तर ने 'तम्हीदात-ए-हम्दानी' (मीरां जी खुदानुमा द्वारा अनुवादित), 'शुमालुल अतक़िया' (अनुवाद मीरांजी) और 'ताजुलहक़ायक़' के अंश उद्धृत करके तीनों की गद्य-शैली पर रोशनी डाल कर अनुवाद और रचना का अंतर स्पष्ट दिया है। इन दोनों अनुवादों में साहित्यिकता का अभाव है। इनकी तुलना में 'ताजुलहक़ायक़' में रचनात्मकता और साहित्यिक गरिमा है। यद्यपि इन तीनों का रचना-विषय एक ही है।

डॉ. नूरुल सईद अख़्तर ने 'ताजुलहक़ायक़' को वजही की रचना साबित करने के लिए पहले उसे सूफ़ी बनाया, हालाँकि मसायले तसव्वुफ बयान करने के लिए सूफ़ी होना ज़रूरी नहीं है। सूफ़ी के लिए आलिम[5] होने के साथ-साथ 'आमिल'[6] होना लाज़मी है। आलिम तो ग़ैर सूफ़ी भी हो सकता है जैसे मुल्ला वजही था। वह ज़बर्दस्त आलिम

---

१. अलौकिक दृष्टि। २. ईश्वर का संदेश ३. सत्य के जिज्ञासु ४. पक्षियों की उड़ान।
५. शास्त्रों का ज्ञाता ६. शास्त्रोक्त बातों पर दृढ़ता के साथ आचरण करनेवाला।

और प्रतिभासंपन्न था और प्रथम पंक्ति का कलाकार। यही कारण है कि उसकी चमत्कारी लेखनी ने शायरी और गद्य मे वह जादू जगाया जिसके आगे बड़े-से-बड़ा जादू भी हेय है।

मैं 'ताजुलहक़ायक़' को वजही की रचना स्वीकार करता हूँ। मेरा यह भी विचार है कि वजही ने अगर 'ताजुलहक़ायक़' न लिखी होती तो 'सबरस' की रचना कदापि नहीं कर सकता था। क्योंकि 'सबरस' मे उसकी अभिव्यक्ति, शैली और कला विकास के चरम-बिन्दु पर दिखाई देती है।

बहरहाल यह बात तो मानना ही पड़ेगा की वजही ने गैर सूफ़ी होते हुए भी तसव्वुफ़ की एक रचना को साहित्य की सीमा में प्रवेश करा दिया। जबकि बहुत-से सूफ़ियों से यह काम न हो सका। और तसव्वुफ़ जैसे नीरस विषय को सरस बना दिया। अतएव 'ताजुलहक़ायक़' की रचना ने ही 'सबरस' जैसे गद्य के कीर्तिमान का मार्ग प्रशस्त किया।

वजही की इन दोनों कृतियों के तसव्वुफ़ से संबंधित अंशों पर एक तुलनात्मक दृष्टि डालिए .

ताजुलहक़ायक़	सबरस
विषय : इश्क़	
"इश्क़ मीरज़ात है, इश्क़ खुलासाए-मौजूदात है, इश्क़ साहिबे कायनात है, जां बी इश्क़ है होर इश्क़ की बात है, शे'र इश्क़ की बात है। बेपरवाई इश्क़ का घर राग इश्क़ का राज़, रेज इश्क़ का राहत, कैफ़ इश्क की झकोर, खुशबूई इश्क़ की बास, हुस्न इश्क की जलवागाह।"	इश्क़ हम बातिन[1] हम ज़ाहिर, इश्क़ सब जगा हाजिर-नाज़िर, इश्क़ निडर इश्क पादशाह, इश्क कूं किसका डर इश्क सुल्तान, छत्र उसका रुस्वाई, इश्क़ का तख़्त इस्तग़नाई[2], इश्क़का हश्म[3] बेपरवाई, इश्क़ ला उबाली, इश्क़ सब ठार मर् या है, इश्क़ कई नीं खाली।"
विषय : खुदा	
"खालिक तूं, राज़िक तूं, रहीम तूं कायम तूं, दायम तूं, जाहिर तूं बातिन तूं हाजिर तूं, नाजिर तूं, कादिर तूं धनी, तूं बेनियाज़, तूं मुस्तग़नीं, तूं परवर-दिगार, तूं जग का पालनहार, तूं सिरजनहार"	खुदा क़ादिर, खुदा हाज़िर, खुदा नाज़िर, खुदा सकता, जिसे ज्यूं मंगता उसे वूं रखता, सात जमीन, सात आसमान में उसका खेल, जो कुछ वो करे सो हुए, उसके हुकुम कूं कौन सके ठेल। आपीं

---

१. आंतरिक २. बेपरवाई ३. नौकर-चाकर

आप जल जलाल, दम मारने या किसे नीं मजाल। कादर कुदरत का धनी, ग़नी मुस्तगनी, होता सब खुदा का माता, हो कहने में हो जता,यां चिरा ना चूं, ज्यूं अरबी में कुन फ़ीकून[१] सिरजया यों कुछ सिरजनहार, करीम रहीम मेहरवान करतार।"

विषय : राग

राग सुनना आशिक़ लोगों का इबादत है, आशिक़ ने इस इबादत मे ते कुज हासिल कर लेना राग एक आवाज़ है कि इस आवाज़ में जांबाज़ कूं, महरम राज़ कूं हज़ार-हज़ार नियाज़ है, इस आवज़ें में खुदा सूं एक-एक बाता होतियां है कि ओ खुदा जानता है, इस आवाज में इश्क़ जागा कर्या है, इस आवाज़ में सिर्र-खुदा[१] है।

जिसका राग इस्म[३] है, वह इश्क़ का जिस्म है, इस जिस्म में इश्क़ का जान है, सुबहान है . . . . . राग में अजब है तासीर, आशिक के दिल कूं लगता ज्यूं तीर, बहते पानी कूं खड़ा करे, उड़ते जनावर कूं पाड़े, सयाने कूं दीवाना करे, हुशियार कूं मस्त कर पछाड़े।"

उपर्युक्त गद्यांशों से दोनों कृतियों की शैली और अभिव्यक्ति के अंतर का साफ पता चलता है।

मुहम्मद कुली कुतबशाह के दौर (१६१२ से १६२६ ई.) जब वजही गुमनामी के कोने में पड़ा था, उसने अपना फ़ारसी दीवान ही संकलित नहीं किया बल्कि उसने सूफ़ी सिद्धांतो से संबंधित अपनी कृति 'ताजुलहक़ायक़' भी पूरी की और इस तरह यह वजही की दूसरी रचना (पहली कुतब मुश्तरी) क़रार पाई। भाषा की दृष्टि से 'ताजुल हक़ायक़' में उतनी प्रौढ़ता नहीं है, जो कि 'सबरस' की मुख्य विशेषता है।

---

१. कहते ही हो जाना, सस्कृत शब्द 'भव' के अर्थ में

२. ईश्वर का रहस्य ३. संज्ञा, नाम

'सबरस'

दकनी गद्य-साहित्य के पहले गौरव-ग्रंथ 'सबरस' की खोज का श्रेय बाबा-ए-उर्दू मौलवी अब्दुल हक़ साहब को जाता है। उन्होंने अप्रैल १९२५ ई. में 'उर्दू' नामक पत्रिका में एक विद्वत्तापूर्ण लेख लिखा और इस लेख के माध्यम से 'सबरस' का उर्दू-जगत से परिचय कराया। १९३२ ई. में मूल पुस्तक भूमिका सहित अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू (हिंद) ने पहली बार प्रकाशित की। इसके उपरात भारत और पाकिस्तान मे इसके अनगिनत संस्करण प्रकाशित हुए। १९४२ ई. में शमीम अनहोनवी ने दो ख़तों में 'सबरस' को लखनऊ से छपवाया। १९४५ में इन पंक्तियों के लेखक ने मौलवी अब्दुल हक़ साहब के आग्रह पर 'सबरस' के 'क़िस्सा-ए-हुस्नो दिल' को संपादित किया और १९७२ में 'मुल्ला वजही के इंशाइए' (निबंध) संपादित किये। इस तरह मानो 'सबरस' को दो पुस्तकों में बाँट दिया गया। ये तीनों पुस्तकें दिल्ली से प्रकाशित हुई है। डॉ. हमीरा जलीली ने जामिया उस्मानिया हैदराबाद से 'सबरस' को तेरह प्राचीन हस्तलिखित पांडुलिपियो की मदद से नये सिरे से व्यवस्था दी है। जबकि का मौलवी अब्दुलहक़ साहब ने सिर्फ हार पांडुलिपियों की मदद से 'सबरस' को संपादित किया है। इस मूल पाठ में काफ़ी परिवर्तन हो गये हैं। लेकिन अभी उनकी थीसिस (सबरस की तनक़ीदी तदवीन) प्रकाशित नहीं हुई है।

यदि हम उस दौर के गद्य को विषय की दृष्टि से विभाजित करना चाहें तो इसके दो भेद हो सकते हैं या दो वर्ग ठहरा सकते हैं :

१. पहला वर्ग धार्मिक गद्य-लेखन का होगा जो अधिकाश लघु-पुस्तिकाओं के रूप में मौजूद है और जिसमें साहित्य की झलक बहुत कम मिलती है।

२. दूसरे वर्ग में कथा-साहित्य आयेगा जिसमें उस दौर की तीन कृतियों को शामिल किया जा सकता है। मुल्ला वजही की 'सबरस' और दो तूतीनामा। ये तूतीनामे 'क़ादरी' और अबुल फज़ल के तूतीनामों के अनुवाद हैं। संग्रहकर्ताओं के नाम अब तक अज्ञात हैं। मुल्ला वजही की कथा 'सबरस' का इन तीनों कृतियों में विशेष महत्त्व है। क्योंकि दूसरी दो पुस्तकें अनुवाद होने के कारण उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं और इनमें से वह पुस्तक, जो अबुल फ़ज़ल के तूतीनामे का अनुवाद है, अपूर्ण है।

भाषा और विषय (जो शैली के महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं) दोनो स्तरों पर इस दौर की कृतियाँ ज्यादा महत्त्व नहीं रखतीं। 'सबरस' से पूर्व की गद्य-रचनाओं का जो महत्त्व है, वह केवल उनकी प्राचीनता को लेकर है, भाषा-शैली की दृष्टि से नहीं।

'सबरस' की भूमिका विशेष महत्त्व रखती है। वजही ने हम्द, नात, मन्क़बत की पुरानी रिवायत को कायम रखा हे। भूमिका आरंभ हम्द से होती है। हम्द में वजही 'फ़ारसी के दानिशमंदान' के साथ-साथ 'ग्वालियर के चातुरां' का भी उल्लेख करता है। और ज़ाहिर है कि एक ज़माने में ब्रजभाषा का बोलबाला था। मुहम्मद हुसैन आज़ाद तो इस क़दर प्रभावित हुए थे कि 'आबे-हयात' में ब्रजभाषा को ही 'उर्दू की माँ' करार दिया था।

हम्द में सबसे पहला दोहरा जो वजही प्रस्तुत करता है, वह कबीरदास का प्रसिद्ध दोहा है :

पोती थी तो खोटी भई पंडित भया न कोय ।
एक ही अक्खर पेम का फेरे सो पंडित होय ।।

मगर यह दोहा ब्रजभाषा में इस रूप में प्रचलित है :

पोथी थी तो खोटी भई पंडित भया न कोय ।
ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े तो पंडित होय ।।

वजही हम्द में इश्क़ और हुस्न का ज़िक्र इस तरह छेड़ता है :

"आशिक कूं इश्क़ माशूक कूं हुस्न दिया और इन दोनों में अपना भेद परगट किया। एकस कूं किया पुरुष, एकस कूं किया नारी, एकता कूं किया प्यारा, एकस कूं किया प्यारी।"

और इस तरह वह हम्द को आकाश से धरती पर उतार लेता है और हम्द को लौकिक बना देता है। फिर अपने युगीन परिवेश का चित्रण करता है। किंबहुना, वजही इश्क़-ए-मजाज़ी (सांसारिक प्रेम) और इश्क हक़ीक़ी (ईश्वर-प्रेम) के छोर मिला देता है और इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि :

"दीन-दुनिया कूं दिया इश्क ने आरायश[१] पैदा
करनहारे ने यूं पैदा किया पैदायश।"

हम्द के अत में इश्क़ और खुदा में अभेद की स्थिति बताता है :

"इश्क़ होर खुदा कुय जुदा नईंच, बात जुदापन भेद हेच।
इश्क़ होता है जहाँ तमाम, वहांचा खुदा है वस्सलाम।"

हम्द के बाद वजही 'दरनाल मुहम्मद मुस्तफ़ा और चहार यार और मन्क़बत अली मुर्तज़ा' शीर्षक के अंतर्गत नात और मन्क़बत लिखता है। मुल्ला असदुल्लाह वजही शीया था फिर भी उसने हज़रत अली के साथ अबू बकर सिद्दक़ और उस्मान का ज़िक्र किया है। यह बात बड़ी अर्थपूर्ण है। वजही कुतबशाही दरबार का वयोवृद्ध और अनुभवी शायर था। दरबारी शिष्टाचार से बखूबी अभिज्ञ था। उद्भट विद्वान था।

---

१. सजावट

बदलती हुई परिस्थितियों की समझ रखता था। यही कारण है कि उसने शीया होते हुए भी मन्क़बत मे खुल्फ़ा-ए-राशिदीन 'चहार यार' की चर्चा की है। वास्तविकता यह है कि अब्दुल्लाह कुतबशाह बारह वर्ष की आयु में १६२६ ई. में तख्त पर बैठा था। अब्दुल्लाह की मां हमात बख्शी बेगम (आत्मा जा सुल्तान मोहम्मद कुली कुतबशाह) के हाथ में हुकूमत की बागडोर थी। प्रो. हारून खाँ शेरवानी के अनुसार स्वयं हमात वख्शी बेगम औरंगज़ेब आलमगीर के फौजी कैम्प में गई और संधि-पत्र पर हस्ताक्षर किये थे। जिसमें पहली शर्त यह थी कि शाही ख़ुत्बे[1] से शीयत के रंग को ख़त्म किया जाये और सुन्नी सिद्धातों के आधार पर खुत्बे को ढाला जाये। वजही इन परिस्थितियों की नज़ाकत को समझता था। इसलिए मन्कबत में 'चहार यार' का ज़िक्र किया है। अब्दुल्ला कुतबशाह के साथ ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण घटना हुई कि उसे मरने के बाद अपने खानदानी शाही क़ब्रिस्तान मे दफ़न होना भी नसीब नहीं हुआ। अब्दुल्ला का गुम्बद शाही क़ब्रिस्तान की सीमा से बाहर है। यह भी औरंगज़ेब के आग्रह पर हुआ था। इसके बावजूद वजही अपने विश्वासों को यहाँ भी प्रकट कर देता है। यथा :

> "मुहम्मद कूं जिस रात हुई मेराज, वहां दूसरा न था कोई अली बाज।"

पैगंबरी और ईश्वर से समीपता की तुलना करते हुए कहता है :

> "नबूयत[2] खुदा की पेशवाई, विलायत[3] महबूबी और इस्तग़नाई। नबूयत कारसाज़ी, विलायत बेनियाजी। विलायत हार गले यार का, नबूयत धंधा घर बार का।"

"सबब तालीफ़ किताब-ओ मदह[4] बादशाह" शीर्षक के अतर्गत वजही दरबार के शिष्टाचार और रख-रखाव का वर्णन करता है :

> सुल्तान अब्दुल्ला ज़िल्लुल्लाह, आलमपनाह, साहिबे सिपाह, हकीक़त आगाह, दुश्मन परवर, सानी सिकंदर, आशिक़ साहिबे नजर, दिल के ख़तरे ती बाख़बर। सूरत में यूसुफ़ ते अगले, आदम बेहोश हुए पत्थर पिघले। हिकमत में अफ़लातून शागिर्द, सख़ावत[5] मे हातिम का खोले बुर्द, शुजाअत[6] में रूस्तम गिर्द, आली हिम्मत, ग़ाजी गर्द, शम्शीर और सत के साहब, करीम धरम होर सत के साहब। दारा दर, फरीदूं फर, क़लीम बयां, मसीहा दम, मर्ख सोलत[7] ज़ोहरा इशरत, खुर्शीद अलम, सुबाह के वक़्त, बैठे तख़्त।"

बादशाह की प्रशंसा के बाद अपने बुलावे और बादशाह की फ़रमायश को इस रूप में प्रस्तुत किया है :

---

१. धर्मोपदेश २. पैगंबरी ३. ईश्वर से समीपता ४. प्रशंसा ५. उदार हृदयता ६. पराक्रम ७. यश

> वजही नादिर मन कूं, दरिया दिल गोहर सुखन कूं, हुजूर बुलाये, पान दिये, बहोत मान दिये होर फ़रमाये इंसान के वजूदीचा में कुछ इश्क़ का बयान करना, अपना नाम अयां करना, कुछ निशान धरना। वजही बहुगुनी गुन भर्या, तस्लीम कर कर सिर पर हाथ धर्या।"

सैयद कुदरत उल्लाह नक्वी इस 'पान देना' 'बहोत मान देना' तस्लीम कर-कर सिर पर हाथ धरना' को उस दौर की रस्म क़रार देते हैं। लेकिन मेरा विचार है कि यह कोई राजकीय शिष्टाचार नहीं था। बल्कि इस तरह कुतबशाही दरबार के वयोवृद्ध और सम्मानित व्यक्ति का अभिवादन किया जाता था। वजही सुल्तान अब्दुल्ला के नाना मुहम्मद कुली के दरबार का मलिकुश्शुअरा था और साथ ही फ़ारसी का ज़बर्दस्त शायर था। इसलिए इस सम्मान का वह उचित रूप से अधिकारी था।

वजही ने 'क़िस्सा-ए-हुस्नो दिल' को गद्य में लिखा, हालांकि वह गोलकुंडा का महान शायर था, जिसने दखनी उर्दू की पहली मौलिक मस्नवी 'कुतब मुश्तरी' सिर्फ़ बारह दिन में लिख डाली थी। और फिर बादशाह ने भी अपनी फ़रमायश में शायरी या कहानी का कोई ज़िक्र नहीं किया था, यह बात भी ध्यान देने योग्य है। वह चाहता तो 'क़िस्सा-ए-हुस्नो दिल' को मस्नवी के फ़ार्म में पेश कर सकता था। इस नुक्ते का संबंध वजही और ग़व्वासी की पारस्परिक गर्वोक्ति से है। वजही, ग़व्वासी की तुलना में, जो सिर्फ़ शायर था, एक गद्यकार के रूप में आकर ही अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर सकता था।

मुल्ला वजही की यह भविष्यवाणी भी बड़ी रोचक है :

> "इस किताब का नाम 'सबरस', सबको पढ़ने आवे हवस, बोल-बोल कूं चढ़े उमस, यादगार हो अछेगा दुनिया में कई बरस।"

वजही ने पुस्तक का नाम 'सबरस' रखने में बड़ी बुद्धिमत्ता और आधुनिक रुचि का सबूत दिया है। साथ भाषा की सहज भंगिमा से काम लिया है। देखते-ही-देखते वजही द्वारा स्थापित नामकरण की यह रीति एक परंपरा का रूप धारण कर लेती है। इब्ने-निशाती अपनी मस्नवी को 'फूल बन' (१६६५ ई.)कहता है, तो क़ाज़ी महमूद बहरी अपनी मस्नवी का नाम 'मन लगन' (१७०५ ई.) रखता है। यहाँ तक कि यह परंपरा 'फ़ज़्ली' तक पहुँचती है और वह अपनी 'दह मजलिस' को 'कर्बल कथा' (१७३१ ई.) का नाम देता है।

वजही, सुल्तान अब्दुल्ला कुतबशाह की फ़रमायश के अनुसार 'सबरस' के पर्दे में संपूर्ण मानवीय भावों का भरपूर चित्रण करता है। इस प्रकार वह मनुष्य की प्रकृति के संपूर्ण रसों को मिलाकर एक ऐसा यौगिक तैयार करता है जिसका नाम 'सबरस' है।

भूमिका के अंतिम भाग 'दर ज़ीनत सुख़न व दर नाम किताब गोयद' में वजही गर्वोक्ति का नया कीर्तिमान स्थापित करता है। वह अपनी और 'सबरस' की प्रशंसा में धारा प्रवाह लिखता चला जाता है। यह सब वह अपने प्रतिद्वंद्वी मुल्ला वजही से अपना लोहा मनवाने के लिए करता है और इसे इस रूप में व्यक्त करता है :

> "गर्ज बहोत नादिर-नादिर बातां बोल्या हूँ, दरिया होकर मोत्यां रोल्यां हूँ, मोत्यां की मौजां का मैं दरिया हूँ, तमाम मोत्यां से भरया हूँ। इस दरिया में गोता खायेगे तो जागा जागा के ग़वासां मोत्यां पायेगे।"

वजही का यह दावा भी गौर तलब है कि :

> "जेते चौसारां, जेते फ़हम धारां, जेते गुनकारां हुए सन आज लगन, कोई इस जहान में, हिंदुस्तान में, हिंदी ज़ुबान सूं, इस लताफ़त, इस छंदां सूं, नज्म़ होर नस्र मिलाकर, गलाकर यूं नहीं बोल्या।"

इसमें वजही 'सबरस' की भाषा को हिंदी करार देता है और गद्य और पद्य के इस मेल को 'सबरस' की शैली ठहराता है।

भूमिका में वजही की लेखनी से इस प्रकार के वाक्य भी निकल जाते हैं :

> "अगर कोई कोड़ होर जिहालत सूं, बद असाल़त[1] सूं, रिआल़त[2] सूं बात करे नासमज यो माया . . . . . "
>
> कोड़ की ज़ात नहनाफ़हम बड़ी बात, न अपस कूं जाने न दूसरे कू पिछाने।।"

इस प्रकार के वाक्यों का यदि मनोवैज्ञानिक निहितार्थ देखा जाये तो निश्चित रूप से इनमें वजही के प्रतिद्वंद्वी ग़व्वासी की ओर ही संकेत किया गया है। वजही का अहंवाद जाने या अनजाने अपने प्रतिद्वंद्वी पर वार करने से नहीं चूका। भूमिका के इस अंश में एक और सार्थक वाक्य मिलता है :

> "अतानवी वाट पाड़या, गाड़या सू गंज काड़्या, कुछ नीं था सो ल्याया, बाट दिखलाया।"

इससे और 'सबब तालीफ़ किताब' (पुस्तक लिखने का कारण) से साफ़ ज़ाहिर होता है कि वजही क़िस्सा-ए-हुस्नो दिल को मौलिक नहीं कहता। वह इसे एक लोककथा ही समझता था।

"जो कौम काफ़िर है, जहाल है, मुसलमानां कूं खून इनो का हलाल है।"

इस प्रकार के वाक्यों में कोई द्वेष या वैमनस्यता नहीं है बल्कि यह ऐसी ही बात है जैसी उर्दू ग़ज़ल में शेख और बिरहमन की छेड़। इनमें जन-सामान्य के विश्वासों की भी झलक भी मिलती है। प्राचीन दास्तानों में दास्तानगो अपनी धार्मिक आस्थाओं का

---

१. खरापन, कुलीनता २. अधमता, नीचता

पुट भी दे देते थे। लेकिन वजही अपने धर्म से भटके हुए लोगों की आलोचना भी करता है :

> "बाजे अजब लोगां हैं ओ धरम, इनौ कूं खुदा की भी कीं शरम, मुसलमानो में आते-जाते, मुसलमान कहावतें अगर यो है मुसलमानी तो काफ़िर की क्या है निशानी ?"

अतएव वजही ने भूमिका में कहीं इसका ज़िक्र नहीं किया कि यह क़िस्सा उसे कहाँ से मिला ? लेकिन यह दावा भी कहीं नहीं किया कि क़िस्सा-ए-हुस्नो दिल उसकी मौलिक उपज है। 'सबब तालीफ़ किताब' और 'गाड़या सों गंज काड़या' सुबूत के तौर पर पेश किया जा सकता है। वजही को सिर्फ़ इस किस्से का ख़ाका चाहिए था जिसमें 'इंसान के वजूद ही में इश्क़ का बयान' किया गया था और यह क़िस्सा उसे मुहम्मद याह्या इब्न सीबक 'फ़ताही' असरारी, ख़ुमारी, नीशापूरी मतूफ़ी (८५२ हिजरी, तदनुसार १४४७ ईस्वी) की फ़ारसी मस्नवी 'दस्तूर उश्शाक़' और उसकी गद्य-टीका 'क़िस्सा-ए-हुस्नो दिल' और 'शबिस्तान ख़्याल' में मिल गया। ख़ाके से ज़्यादा उसे और कुछ ज़्यादा चाहिए भी नहीं था। वजही ने इस ख़ाके में जो रंग भरे हैं, वे उसके अपने हैं। यही कारण है कि मुमताज़ अहमद साहब 'सबरस' को वजही की मौलिक रचना बताते हैं और 'किस्सा-ए-हुस्नो दिल' को वजही की आप-बीती समझते हैं। हालाँकि वजही ने किस्सा 'फ़ताही' से ही लिया है लेकिन इसे चोरी नहीं कहा जा सकता।

देवीसिंह चौहान का मत है कि 'क़िस्सा-ए-हुस्नो दिल' का कथानक संस्कृत से लिया गया है। इसका स्रोत ग्यारहवीं शताब्दी ईसवी के एक भारतीय ब्राह्मण कृष्ण मिश्र के रूपक 'प्रबोध चंद्रोदय' में है। इसके विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं, जैसे:

गुजराती	-	१०	
मराठी	-	२	
फ़ारसी (ईरान)	-	४	(दस्तूरे उश्शाक़ और हिदायकुल उश्शाक़ सहित)
फ़ारसी (हिंदी)	-	६	
तुर्की	-	४	
दखनी	-	६	
उर्दू	-	८	
ग्वालियरी या हिंदी	-	१	
अंग्रेज़ी	-	३	
जर्मन	-	१	
कुल	-	४५	

देवीसिंह चौहान ने 'प्रबोध चंद्रोदय' की खोज में जो परिश्रम किया है वह प्रशंसनीय है। उनका यह कथन भी युक्तियुक्त है कि 'प्रबोध चंद्रोदय' नाटक का प्रभाव भारत, ईरान, तुर्किस्तान और इंग्लैंड के साहित्य पर देखा जा सकता है। गुजराती साहित्य पर 'प्रबोध चंद्रोदय' का प्रभाव आरंभ से ही रहा है। लेकिन 'क़िस्सा-ए-हुस्नोदिल' को मूल संस्कृत स्वीकार करने मे मुझे आपत्ति है। 'क़िस्सा-ए-हुस्नो दिल' का स्रोत 'प्रबोध चंद्रोदय' कदापि नहीं है। क्योकि दोनों कथाएँ एक-दूसरे से भिन्न हैं। हुस्नो दिल की कथा विशुद्ध ईरानी है। और 'प्रबोध चंद्रोदय' में विवेक और मोह का संघर्ष है। रूपक की समानता के बावजूद दोनों कथाएँ अलग-अलग हैं। अलबत्ता 'प्रबोध चंद्रोदय' के विभिन्न भाषाओ में हुए अनुवादों से यह साबित ज़रूर होता है कि 'प्रबोध चंद्रोदय' नाटक 'क़िस्सा-ए-हुस्नो दिल' का प्रेरणा स्रोत रहा होगा।

अत: 'सबरस' का कथानक 'प्रबोध चंद्रोदय' से ग्रहण नहीं किया गया है। इसके कथानक का स्रोत 'फ़ताही' का 'क़िस्सा-ए-हुस्नोदिल' है। 'प्रबोध चद्रोदय', 'क़िस्सा-ए-हुस्नो दिल' की प्रेरणा हो सकता है, मूल स्रोत नहीं।

बाबा-ए-उर्दू मौलवी अब्दुलाहक़ से लेकर डॉ. नूरुल सईद अख़्तर तक सभी ने मुल्ला वजही पर यह आरोप लगाया है कि 'सबरस' (१६३६ ई.) की कथा उसने फ़ताही के 'क़िस्सा-ए-हुस्नो-दिल' से उड़ाई है।

वजही और ग़्वासी की खींचतान की पृष्ठभूमि में साहित्यिक चोरी की यह परंपरा काफ़ी कमज़ोर मालूम पड़ती है। वजही और ग़्वासी की खींचतान 'क़ुतब मुश्तरी' (१६०९ ई.) में हो चुकी थी। मुल्ला ग़वासी से जहाँ कमोबेश तीस वर्ष तक विवाद रहा हो, वहाँ वजही इस तरह की साहित्यिक चोरी करने की ग़लती नहीं कर सकता था। इसके अतिरिक्त वजही बड़े आत्म-विश्वास के साथ अपनी उस्तादी का दावा करता है, चोर यह दुस्साहस नहीं कर सकता। बल्कि वजही को 'सबरस' की नोक-पलक सँवारते वक़्त भी अपने प्रतिद्वंद्वी की मौजूदगी का एहसास रहता है।

मज़े की बात यह है कि मुल्ला वजही की तरह फताही ने भी अपनी तीनों रचनाओं में जो 'क़िस्सा-ए-हुस्न-ओ-दिल' पर आधारित हैं, कहीं भी कथा-स्रोत की ओर संकेत नहीं किया। फ़ताही ने यह भी नहीं बताया कि इस रूपक-कथा को लिखते समय वह पूर्ववर्ती अदीबों की किन कृतियों से लाभान्वित हुआ है ? अलबत्ता 'दस्तूरे उश्शाक़' में कुछ ऐसे शे'र ज़रूर मिलते हैं जिनसे इस विचार को बल मिलता है कि फ़ताही ने कृष्ण मिश्र से ज़रूर लाभ उठाया होगा।

लेकिन इसके बावजूद वास्तविकता यह है कि चोरी का आरोप न फ़ताही पर लग सकता है और न वजही पर और न ही विभिन्न भाषाओं के दूसरे साहित्यकारों

पर जिन्होंने 'क़िस्सा-ए-हुस्नोदिल' अपने-अपने अंदाज़ से पेश किया है। क्योंकि यह क़िस्सा समय के लम्बे अंतराल के बाद लोककथा का रूप धारण कर चुका था और विभिन्न देशों के साहित्य में थोड़े-बहुत अंतर के साथ प्रचलित हो चुका था। जैसे फ़ताही ने कृष्ण मिश्र से लगभग चार सौ वर्ष बाद फ़ारसी में और मुल्ला वजही ने लगभग छः सौ वर्ष बाद दखनी उर्दू में प्रस्तुत किया था।

सुल्तान अब्दुल्ला की फ़रमायश "इंसान के वजूदीचा में कुछ इश्क़ का बयान करना" में भी इसी लोककथा की ओर एक हलका-सा संकेत मिलता है। 'गाड्या सो गंज काड्या' से साफ़ ज़ाहिर होता है कि 'क़िस्सा-ए-हुस्नो दिल' का अस्तित्व तो था लेकिन एक गुप्त खज़ाने की तरह था, जिसे वजही ने खोद कर निकाला। 'कुछ नहीं था' भी इस बात का प्रमाण है कि 'क़िस्सा-ए-हुस्नो-ओ-दिल' की कोई साहित्यिक महत्ता नहीं थी, विशेषतः दखनी साहित्य में। यह सिर्फ़ एक लोककथा थी, वजही ने इसे एक साहित्यिक रचना में रूपांतरित किया यही कारण है कि वजही ने 'क़िस्सा-ए-हुस्ने-ओ-दिल' की संरचना में लोककथा के तत्त्वों का समावेश किया। इस किस्से मे लोककथा का लबो-लहजा देखिए :

> "ऐसे में यूँ हो खुदा का फ़रमान, हुस्न के तन में मोतीजा तिलमिलने लगया प्रान।" या -
>
> "अलक़िस्सा कि जिस वक्त तौबा, गम्ज़ा के लश्कर तो शिकस्त खाया, सो बदन के शहर के उधर रवाना होकर अक्ल कने आया।" या :-
>
> "बुलंद अक्ल दिल का उजाला मोतीजा खूब, मोतीजा आला, यो बात समझाया, यही क़िस्से कते ते सो आया।"

अर्थात 'हम्द' से ही 'सबरस' की वर्णन-शैली कुछ ऐसी प्रतीत होती है जैसे मुल्ला वजही कुतबशाही दरबार से निकलकर, किसी चौराहे पर बैठा, आम लोगों को उनके ही लबो-लहजे में इश्क़िया दास्तान सुना रहा हो। इस अवामी चौराहे की दो माँगे है- उपदेश और ऐंद्रिकता। दोनो विरोधी तक़ाजे का सगम है 'सबरस' और मुल्ला वजही इन दोनों तक़ाजों को बखूबी पूरा करता है।

वजही के कलात्मक सौंदर्य में ऐंद्रिकता के भावों का समाहार है और उसके छोटे-छोटे वाक्यों में एक खनकता हुआ संगीत है, तरन्नुम है। भाषा और शैली का यह संगीत भी 'सबरस' को लोककथा के समीप पहुँचा देता है। 'किस्सा-ए-हुस्नो-दिल' में वजही की दो ग़ज़लों के अलावा हिंदी दोहरे, फ़ारसी और उर्दू शे'र (२४६) हैं। ये शे'र भी नौटंकी की तर्ज़ के हैं।

'कुतब मुश्तरी' के साहित्यिक शे'र 'सबरस' के लोक-जीवन में उतने नहीं खपत सकते थे जितने मौजूदा सीधे-सादे और साफ़ शे'र। वजही की दो ग़ज़लें जो 'सबरस'

में मौजूद हैं, वे इन तमाम शे'रों से ज़्यादा सुंदर हैं। लेकिन वजही क़िस्से में प्रसंगानुसार दास्तान के वातावरण का पूरा-पूरा ध्यान रखता है और अवामी लबो-लहजे में आशु-कविता करता है। जैसे हम्द में ही एक शे'र है :

धनी जो धरती धर्‌या और भी धरे सो होय
किसी के करने ते क्या होए ख़ुदा करे सो होय

अब इस शे'र की जगह 'कुतब मुश्तरी' कोई शे'र रखिए तो 'सबरस' की प्रकृति और वातावरण में अनमेल और असंगत होकर रह जायेगा। 'सबरस' को उसकी वर्णन-शैली, संगीतात्मकता, सामान्य लबो-लहजा और तुकबंदी ने लोककथा और नौटंकी का-सा रंग दे दिया है। इसके कुछ शे'र द्रष्टव्य हैं :

सब किसी कूं ख़ुदा मुराद देवे
उसकी मेहनत की उसकूं दाद देवे
पराये शहर में हरगिज़ ख़ुदा किसे न ले जाये
अगर हज़ार भला है बी तो उसकूं कौन पतियाये
अगर कोई मर्द है या इस्तरी है
दुनिया में सब दग़ाबाज़ी भरी है
अजब चाले भरी है औरतां यू
न जानू कां ती सिखयां हुक्मता यू
दिल कू अपने उचाट ख़ूब नहीं
घर में दायम[1] कुचाट ख़ूब नहीं

अतः इन शे'रो मे सीधी-सादी तुकबंदी है, शायराना कलात्मकता नही है, जिसे वजही ने बड़ी कुशलता के साथ 'सबरस' की लोककथा के अंदाज़ मे प्रस्तुत किया है। इसीलिए मेरी राय में 'सबरस' लोककथा और नौटंकी के ज़्यादा पास है। इसे एक साहित्यिक लोककथा कहा जा सकता है। इन तथ्यो की रोशनी में, मैं विरोध की चिंता न करते हुए, चोरी की इस रिवायत को ग़लत और बेबुनियाद क़रार देता हूँ।

क़िस्सा, पात्र और सामाजिक परिवेश

'क़िस्सा-ए-हुस्नोदिल' का कथा-सार यह है :

पश्चिम का बादशाह था 'अक़्ल' और उसकी राजधानी थी सीस्तान। संपूर्ण पृथ्वी में उसका यश फैला हुआ था। उसका एक बेटा था - 'दिल'। रूप में अतुलनीय, शराब का रसिया। 'अक़्ल' ने 'दिल' को मुल्क 'तन' की बादशाहत दे दी।

"अलक़िस्सा एक रात दिल बादशाह, आलमपनाह, ज़िल्लुल्लाह, साहबे सिपाह ने कमाच, तबूर, चंग, रबाब सूं, बेहिजाब सूं दो-चार प्याले शराब

---

१. नित्य, सदा

के पिया था। अरकान दौलत, नदीम, शायर, किस्साख्वां, शहनामा ख़्वां, खुशतबां, लतीफ़ा गोयां, हाज़िर जवाबां, गुलरूयां, खुशखुयां सब हाज़िर मजलिस थे, मजलिस किया था।"

ऐन मस्ती के आलम में बादशाह के एक नज़दीकी व्यक्ति ने एक ताज़े आबेहयात का क़िस्सा, पढ़ा कि जे कोई यह ताज़ा आबे हयात पीवेगा, दूसरा खिज्र[१] होवेगा, इस जग में सदा जीवेगा। 'दिल' बहुत उत्साहित हुआ। उसके मन में 'आबे-हयात' को प्राप्त करने की इच्छा जाग्रत हुई। उसे अपने राज-पाट की भी चिंता न रही।

'दिल' का जासूस 'नज़र' आबे हयात की खोज में निकला। 'नज़र' चलते-चलते शहर 'आफ़ियत'[२], में पहुँचा, वहाँ के बादशाह का नाम 'मानूस'[३] था। उसने कहा, "आबे-हयात कते सो वो आबे-हयात मर्द के मूं का पानी, जो लगन यो पानी तो लगन मर्द की ज़िंदगानी।"

वहां से आगे बढ़ा तो राह में ऊँचा पहाड़ मिला, वह ज़हद का पहाड़ था। उस पर 'ज़र्क़'[४] नाम का एक बूढ़ा 'जाहिद'[५] रहता था। उसने कहा, "आशिक के अंझवाँ में है, उस पानी की निशानी।"

अंततः 'नज़र' जासूस बादशाह 'हिम्मत' के क़िले में पहुंचा। हिम्मत ने उसे *आबे-हयात का* पता बताया कि विलायत पूर्व में इश्क़ नामक बादशाह है, उसकी बेटी 'हुस्न' अतीव रूपवती है। कोहकाफ़ की दूसरी ओर एक शहर है - शहर दीदार। उसमें एक बाग़ है -रुख़सार। "इस बाग़ में एक चश्मा है, इस चश्मे का नाम दहन[६]. . . . . इस चश्मे में तूं मँगता सूं आबे-हयात।"

रास्ते में शहर सगसार, उसका हाकिम 'रकीब'[७], शहर दीदार का रखवाला है। यह पता कर 'हिम्मत' ने अपने भाई 'कामत' को सिफ़ारिशी पत्र लिखा जो शहर दीदार में था। 'नज़र' शहर सगसार में गिरफ़्तार हुआ। कीमियागर बना। गुलशन रुखसार में पहुँचकर 'रक़ीब' को धोखा देकर रिहा हुआ। क़ामत से मिला। क़ामत के गुलाम सीम साक़ ने उसे शरण दी।

शहर दीदार में उसकी सहेली लट से भेंट हुई। लट ने नज़र को अपने कुछ बाल दिये। बाग़ रुख़सार में गम्ज़ा (हुस्न का सेवक), नज़र का भाई जो बचपन में बिछड़ गया था, मिला। यह मिलन बड़े नाटकीय ढंग से हुआ। गम्ज़ा, नज़र को क़त्ल करना चाहता था कि उसकी बाँह पर बँधे हुए लाल को उसने पहचान लिया। गम्ज़ा की मार्फ़त

---

१. एक पैग़म्बर जिनके अधिकार में वन हैं, जो भूले-भटकों को मार्ग बताते हैं। २. सुख, चैन
३. प्रेमी ४. छल ५. परहेजगार ६. मुख ७.एक स्त्री से प्रेम करनेवाले दो व्यक्तियों को एक दूसरे के रक़ीब कहते हैं।

हुस्न से भेंट हुई। नज़र जौहरी बना। रत्न पर दिल का चित्र बना था। नज़र ने दिल का परिचय कराया तो हुस्न, दिल पर आसक्त हो गयी। और नज़र से बोली कि दिल को किसी तौर लाकर मुझसे मिला। नज़र बोला कि उसके बाप अक्ल ने उसे तन के कोट में बंदी बना रखा है। हाँ, एक उपाय अवश्य है कि दिल आबे-हयात पाने के लिए बहुत लालायित है। अगर तुम अपना आदमी मेरे साथ कर दो और मुझे आबे हयात का पता-निशान बतला दो तो मैं उसे ला सकता हूँ।

हुस्न ने अपना एक गुलाम 'ख़्याल' (चित्रकार) नज़र के साथ कर दिया और उसे एक चमत्कारी अँगूठी दी जिससे आबे-हयात के झरने की दिशा का पता चलता था। इस अँगूठी की एक यह विशेषता भी थी कि इसे मुँह में रखनेवाला व्यक्ति किसी को दिखाई नहीं देता था।

खयाल ने हुस्न का चित्र बनाकर दिल को पेश किया। दिल, हुस्न पर आसक्त हो गया। ये फरार होना ही चाहते कि वज़ीर 'वहम' ने अक्ल बादशाह के कान भरे और दिल और नज़र दोनों नज़रबंद कर दिये गये।

नज़र अँगूठी मुँह में रखकर कैद से मुक्त हो गया। शहर दीदार पहुँचा। बाग़ रुख़सार पहुँच कर दहन नामक झरने से आब-हयात पीना ही चाहता था कि अँगूठी मुँह से निकल झरने में गिर गयी। वह भी अलोप हो गया।

रक़ीब ने नज़र को फिर गिरफ्तार कर लिया। 'लट' के बाल आग पर रखे। लट तुरंत उपस्थित हुई। नज़र को मुक्ति मिली। हुस्न ने ग़म्ज़ा और नज़र को रवाना किया कि वे दिल को ले आयें। ज़हद नामक पर्वत के नीचे नज़र और ग़म्ज़ा सो रहे थे कि ज़र्क़ के बेटे तौबा को इसकी सूचना मिली। युद्ध हुआ। तौबा पराजित हुआ।

तौबा हार कर अक्ल के पास पहुँचा।

ग़म्ज़ा और नज़र फ़क़ीरों के वेश में शहर आफियत पहुंचे। उन्हें देखते ही नामूस बादशाह फ़क़ीर हो गया। अक्ल ने दिल को क़ैद से निकाला और सेना साथ कर दी। अक्ल भी दो-तीन मंज़िल साथ आया। गम्ज़ा ने दुआ-ए-सैफ़ी[1] पढ़कर सेना पर फूँकी। सारी सेना हिरन बन गयी। दिल ने हिरनों के पीछे घोड़ा दौड़ाया। वह सेना से बिछड़ गया।

नज़र और गम्ज़ा इसी तरह दिल को शहर दीदार तक ले गये। हुस्न को सूचना मिली। हुस्न ने अपने पिता इश्क़ को पत्र लिखा कि मेरा एक गुलाम खयाल, अक्ल ने गिरफ़्तार कर लिया था। जब उससे ख़्याल को आज़ाद करने को कहा तो सेना लेकर चढ़ आया।

---

१. शत्रु का मारण करने की दुआ ।

इश्क़ ने अपनी सेना मुक़ाबले के लिए भेज दी लेकिन वह स्वयं नहीं आया। इश्क़ का सिपहसालार 'मेहर' था। अन्य वज़ीरों के नाम ये हैं - जफ़ा, हिम्मत, दर्द, मेहनत, ग़म, अलम, कल्लाशी, ज़ारी, आह, नाला, मुबतिलाई, बेनवाई, बदनामी, रुस्वाई, फ़िराक, इश्तियाक़, ख़ूंखारी, दस्तबारी, हसरत, सोज़िश, बला, रज, अताब, आज़ार, अज़ाब, हैरानगी, परेशानगी, सरगर्दानगी और दीवानगी।

अक़्ल के वज़ीरों के नाम हैं – सब्र, शक्केब, ताक़त, करार, आराम, राहत, निशात, आसूदगी, फ़राग़त, आशायश, ख़ुशदिली, ख़ुशी, ख़ुर्रमी, ऐश, इशरत, बहजत, शाहमानी और बेग़मी।

पहला दिन – ग़म्ज़ा और अक्ल़ का युद्ध। "एक दीस गम्ज़ा आकर अक़्ल के मुँह चढ़ा और ख़ूब दो-दो हात लड़्या।"

दूसरे दिन कामत ने हम्ला किया, अक़्ल की सेना में तबाही मचा दी। तीसरी रात ज़ुल्फ़ ने हमला कर दिया। चौथे दिन भी युद्ध जारी रहा।

हुस्न चिंतित हुई। ख़्याल के परामर्श से उसने अपने वेताल को काफ़ (एक पर्वत) से बुलाया। वेताल ने अपनी सेना 'मेहर' की सहायता के लिए भेजी। हुस्न के सेनापति हलाल ने दिल को घायल कर दिया। दिल गिरफ़्तार हुआ। अक़्ल भाग गया।

इश्क़ के आदेश से दिल को बाग़ रुख़सार के महल में क़ैद कर लिया गया। सिपहसालार मेहर की बेटी वफ़ा की सहायता से हुस्न ने दिल से 'विसाल' (मिलन) के छज्जे पर भेंट की।

दिल के निगहबान नियुक्त किये गये-नाज़, ग़म्जा, शेवा, इशवा, छंद और चाला।

हुस्न, जब दिल को शराब पिलाकर बेसुध कर देती थी, तब मिलती थी। एक दिन रक़ीब की बेटी ग़ैर ने उसे देख लिया। ग़ैर ने हुस्न की अनुपस्थिति मे इसी विधि से भेंट की। ख़्याल ने हुस्न को सारा वृतांत सुना दिया। हुस्न ने ग़ैर को भला-बुरा कहा। वह वेश बदल कर अदृश्य हो गयी। दिल को हुस्न ने कारावास में डलवा दिया। रक़ीब ने ग़ैर के संकेत पर ख़याल, तबस्सुम और नज़र को जादू से दीवाना बना दिया और दिल को शहर सगसार में लाकर हिज्रां के किले में क़ैद कर दिया।

कुछ दिनो बाद ग़ैर को अपने किये पर लज्जा आई। उसने हुस्न को वास्तविकता से अवगत कराया। क्षमा-याचना की।

हुस्न ने दिल को पत्र लिखा। क्षमा माँगी। दिल ने क्षमा कर दिया।

पराजय के बाद अक़्ल शहर 'तन' में छुप गया था। उसका सिपहसालार सब्र, हिम्मत के पास पहुँचा। हिम्मत सेना लेकर शहर दीदार चला। क़ामत के घर पहुँचा। हिम्मत अपने भाई क़ामत से मिला। क़ामत के परामर्श से हिम्मत ने इश्क़ से संधि

कराई। अक़्ल को वज़ीर का पद मिला। दिल को कोट हिज्रां से मुक्त कराया। रक़ीब और ग़ैर को बेड़ियों में जकड़ कर कारावास भेज दिया गया।

दिल और हुस्न का विवाह हुआ।

एक दिन दिल, हिम्मत और नज़र तीनों शराब पिये हुए बाग़ रुख़सार पहुँचे। आबे-हयात का झरना देखा। उसके किनारे हज़रत ख़िज्र को खड़ा पाया। हिम्मत के कहने पर दिल ने ख़िज्र के क़दम चूमे और ख़िज्र ने आँखों-आँखों में उसे ब्रह्मा - ज्ञान करा दिया।

हुस्न और दिल का ज्येष्ठ पुत्र यह पुस्तक 'सबरस' है। वजही के शब्द हैं :

> "दिल को फ़र्ज़ंदां[१] खिर्दमंदां[२] हुए। इस पर्ज़ंदां में का बड़ा फ़र्ज़ंद यो किताब ..... अपने वक्त का लुकमान, अफ़्लान अपने वक्त का खुसरो, फ़रहाद, मजनूं। अपने वक़्त का ज़हीर, कमाल, सुलेमान। अपने वक़्त का हर एक बात का हादी[३] .... हातिफ़ ग़ैब का आवाज़, महरम इसरार, महरम राज़, राजदारां का आधार, आशिकां के जीवां का यार ..... बात इसकी ज्यूं शकर ज्यूं नाबात[४]। जो लगन दुनिया, तो लगन उसे हयात।"

'सबरस' के इस समापन में अनेक विशेषताएँ छुपी हैं। इसमें कला के बुनियादी मूल्य प्रस्तुत किये गये हैं। साथ ही कला-सृजन को मनोवैज्ञानिक कारणों पर भी रोशनी डाली गयी है। यों तो समूची कृति में तुलनात्मक रूप से एक अच्छे व्यक्तित्व की छवि प्रस्तुत की गयी है। मनुष्य की प्रकृति में जो मानसिक अंतर्विरोध पाया जाता है और जिसके कारण उसके भीतर टकराव होता रहता है, इस अंतर्विरोध को 'सबरस' की कथा में कारगर अभिव्यक्ति मिली है।

वजही कला को हृदय (दिल) और बुद्धि (ख़िरदमंदी) का योग कहता है। जागरूकता और दृष्टि की व्यापकता का नाम कला है। कला में चिंतन और दर्शन का तत्त्व भी होता है और अलगाव का भाव भी रहता है। लेकिन कला बहरहाल कला रहती है। वह कहता है :

> "कलाम का साहब, फ़ाम का साहब, इल्हाम का साहब ....."

कला में शैली और अभिव्यक्ति का कौशल भी होता है और जाग्रत विवेक भी। इसमें गढ़ने का आयास भी है और प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष का रूपांतरण भी। कला में बाह्य सामाजिक यथार्थ के साथ-साथ निजी आवेगों के लिए गुंजायश होती है। कला में जीवन की आंतरिक तथा बाह्य स्थितियों की सही समझ ज़रूरी है। वजही कहता है:

---

१. पुत्र २. बुद्धिमान ३. पथ प्रदर्शक ४. शुद्ध।

> "रोशन ज़मीन, साहबे तदबीर, हर फ़न में माहिर, छुपया उसके अंगे जाहिर . . . . . साहिबे हाल, साहिबे हासिल, हातिफ़ गैब की आवाज़, महरम इसरार, महरम राज़।"
>
> कलाकार अपने समय से परिचित तथा अनुभव-संपन्न होता है। सच्चे अनुभव कला की सफलता का आधार हैं।

कला में अनुभव, संवेदना तथा विचार के तत्वों के अतिरिक्त वजही आह्लाद तथा मनोरंजन का भी हिमायती है। कला में सौंदर्य और सजावट का तत्त्व भी होता है:

> आशिकां के जीवां का यार, मजलिस का सिंगार, दिल के बाग़ का बहार, सिरते पाँव तक गुलज़ार . . . सब के दिल को भाता, बहुत खुशशक्ल, खुश रू . . . सबके दिलां का आराम, बहुत इसमें अक्ल, बहुत इसमें फ़ाम[1]।"

वजही यह भी जानता है कि श्रेष्ठ कला में आने वाले युग की आहट छुपी होती है तथा वह आनेवाली पीढ़ियों का मार्गदर्शन करती है।

> "हरेक बात का हादी[2]. . . . अजब साहबे दर्द था, कहेगा, हादी है कहेगा, मुनादी है कहेगा।"

वजही इस सच्चाई से भी परिचित है कि कला का मसला ज़ोर - जबर्दस्ती का मामला नहीं है। लेकिन यह श्रमसाध्य भी है और स्वतःस्फूर्त भी। कलाकार की सृजनात्मक प्रतिभा और सचेत परिश्रम से श्रेष्ठ कला अस्तित्व मे आती है।

"ज़ोर सूं नहीं आता है फ़ाम, समज सूं आ लगता काम।"

वजही की दृष्टि में कला के उत्कृष्ट मूल्य सौंदर्य की अभिव्यक्ति तथा हृदय-ग्राह्यता में निहित हैं। कला एक सौंदर्यात्मक सच्चाई है। अतएव 'सबरस' के समापन में कला के आधारभूत मूल्यो को गंभीरता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

'सबरस' के क़िस्सा-ए-हुस्नो दिल में छोटे-मोटे छियत्तर पात्र हैं। 'ख़ाल' के गुलाम हब्शी बच्चे इनके अलावा हैं। क़िस्से में चौदह स्थानों का उल्लेख है। 'दिल' इस क़िस्से का नायक है। बादशाह है, इसलिए राग-रंग का रसिया है। शराब का मतवाला है। लेकिन इतना पितृभक्त है कि अपने क़ैद होने की शिकायत नहीं करता और एक आज्ञाकारी बेटे की भांति उसके आदेशानुसार सेना लेकर शहर दीदार की और बढ़ जाता है। रण-भूमि में वीरता का प्रदर्शन करता है और घाव खाता हे। सुंदरता प्रेमी है इसलिए 'गम्ज़ा' के मायावी हिरनों के पिछे घोड़ा डाल देता है। निष्ठावान प्रेमी है इसलिए युद्ध

---

१. रंग २. पथ प्रदर्शक

में घाव खाकर तथा बाग़ में क़ैद होकर भी अपनी प्रेमिका की ओर से मन मैला नहीं करता। जब 'हुस्न' उसे रुखसार बाग़ से निकलवा कर अपने कठोर कारावास में डाल देती है और 'रक़ीब' उसे वहाँ से निकालकर हिज्रां के कोट मे बद कर देता है तो वह 'हुस्न' के इस व्यवहार को उसकी स्त्रियोचित दुर्बलता समझता है। और जब वह लज्जित होकर अपनी गलती के लिए क्षमा-याचना करती है तो वह बड़ी उदारहृदयता के साथ उसे क्षमा कर देता है।

'हुस्न' का चरित्र भी बड़ा प्रभावशाली है। वही इस क़िस्से की नायिका भी है। इसमें बहुत-सी विशेषताएँ हैं। हुस्न का व्यवहार अद्वितीय है। बड़े बाप (इश्क़) की बेटी है। आबे-हयात पर इसका अधिकार है। दिल पर आसक्त होती है तो खुद जतन करके उसे बुलवाती है। जब 'अक़्ल' और दिल सेना लेकर शहर दीदार की ओर बढ़ते हैं तो बाप को न केवल सूचना देती है बल्कि होशियारी के साथ उसे युद्ध में शामिल कर लेती है और अपना कमानदान (हलाल) भी बाप के सिपहसालार 'मेहर' के मोर्चे पर भेज देती है। 'दिल' आहत होता है तो तड़प उठती है। लेकिन समय को देखकर चुप रह जाती है। विजय के बाद बाप को सूचित कर देती है और आगे के लिए उसे समझाने के लिए 'वफ़ा' को भेजती है। उससे गुप्त मिलन का उपाय निकालती है। 'ग़ैर' धोखा देती है तो अंगारों पर लोटती है। 'दिल' से रुष्ट होकर उसे सज़ा देती है। जब 'ग़ैर' के पत्र से वास्तविकता का पता चलता है तो लज्जित होकर प्रेमी से क्षमा भी माँगती है। इस रूप में वह युक्ति और कर्म की साक्षात् प्रतिमा है। वह युद्ध और प्रेम दोनों में निष्णात है। वह हर जगह दृढ़ता और साहस का प्रदर्शन करती है। स्त्री सुलभ दुर्बलताओं के बावजूद वह बेहद आकर्षक नज़र आती है।

इश्क़ एक महत्त्वाकांक्षी और उदारमना बादशाह है। 'अक्ल' से युद्ध करने वह अपनी सेना को भेज देता है। लेकिन खुद अपनी जगह से नहीं हिलता है। अंत में, 'हिम्मत' की सिफ़ारिश पर 'अक़्ल' का क़ुसूर माफ़ करके उसे वज़ीर बना लेता है। वह एक मुहब्बत करनेवाला बाप है। जो केवल बेटी के चाहने पर 'अक़्ल' के मुकाबले में अपनी सेना भेज देता है। 'अक़्ल' उससे निम्न कोटि का बादशाह है। वह कानों का कच्चा है। अपना भेद किसी को नहीं देता। अपने वज़ीर 'वहम' के बहकाने में आकर 'इश्क़' से लड़ने के लिए आमादा हो जाता है। लेकिन बेटे (दिल) को यह कह कर चौकस कर देता है कि तुम शहर दीदार अकेले न जाओ क्योंकि स्त्रियो की चालाकी का कुछ भरोसा नहीं। अतएव उसमें वह बड़प्पन नहीं, जो 'इश्क़' में है।

'रक़ीब' को छोडकर सभी पात्रों के नाम गुणवाचक हैं — यथा नाम तथा गुण। उनकी विशेषताएँ उनके नाम से प्रकट होती हैं। अलबत्ता 'रक़ीब' सिर्फ नाम का रकीब

है। क्योंकि 'रक़ीब' दिल का रक़ीब नहीं है। कम-से-कम क़िस्से में संकेत भी नहीं मिलता कि वह 'हुस्न' के चाहनेवालों में है। वह सिर्फ़ अपनी बेटी 'ग़ैर' के कहने पर 'दिल' को शहर दीदार के कारावास से निकालकर शहर सगसार में लाता है और हिज्रां के कोट में बंद कर देता हे। 'दिल' के प्रति उसके मन में कोई बुराई नहीं है। 'ग़ैर' अवश्य 'हुस्न' की सौत है। जिसके कारण वजही ने कई पन्ने सोतिया डाह पर स्याह किये हैं। लेकिन यह एक बेजान चरित्र है कि 'दिल' से सिर्फ़ एक बार जी बहलाकर 'हुस्न' से क्षमा माँग लेती है। इसके बावजूद उसे क्षमा-दान नहीं मिलता। लेखक को उससे सहानुभूति अवश्य है। क़िस्से के अंत में वह उसे शिष्टता का सबक़ सिखाने के लिए कारावास दिलाता है लेकिन इस परिणाम पर वह खेद भी व्यक्त करता है।

डॉ. सुहेल बुख़ारी के अनुसार, दरअसल वजही दास्तान गोई की कला से अनभिज्ञ है। वह नहीं जानता कि दास्तान की जान भाषणों और उपदेशों में नही, नयी-नयी घटनाओं की रोचकता में निहित है। यह दास्तान कम, उपदेश अधिक प्रतीत होता है। वजही को भाषण देने का बहुत शौक़ है। जहाँ ज़रा-सा मौक़ा मिल जाता है वहाँ सदाचार और नैतिकता के उपदेशों पर पृष्ठ दर पृष्ठ मरता चला जाता हे। वह प्रायः दो स्थलों पर बात को विस्तार देता है। एक तसव्वुफ़ (अध्याय) के सिद्धांतो की व्याख्या करते समय, दूसरे बादशाह की मर्यादा का वर्णन करते समय। शेष स्थलों पर उसके भाषण अपेक्षाकृत संक्षिप्त हुआ करते हैं। लेकिन वर्णनों में जो सबसे विस्तृत हैं, 'अक़्ल' को 'वहम' की सीख और दूसरा इश्क़, आशिक़ और माशूक़ से संबंधित वजही का बयान। इनमें पहला जैसे कि वजही का 'सियासतनामा' है

डॉ. बुख़ारी को 'हुस्न' के नख-शिख वर्णन और हुस्न और दिल के एक दूसरे को लिखे पत्रों में भी कोई नवीनता या आकर्षण नहीं दिखाई देता। वे इस बात को अवश्य स्वीकार करते हैं कि 'सबरस' अपने युग मे एक अच्छी गद्य-रचना के रूप में चर्चित रही होगी। और यह कि वजही बातों का धनी अवश्य है। उसे ज़रा-सा अवसर मिल जाये तो देखिए कैसे-कैसे उपदेश देता है। डॉ. बुख़ारी, वजही और ग़व्वासी के विवादों की पृष्ठभूमि को भी नज़रअंदाज कर गये हैं। अन्यथा 'सबरस' को 'उपदेश-संग्रह' कहने की असलियत भी खुल जाती। विवाद के कारण यह अनिवार्य भी था। यद्यपि इससे यह दोष अवश्य पैदा हो गया कि दास्तान के नैरंतर्य की कड़ियाँ बिखर गई हैं। डॉ. सुहेल यह बात भी भूल गये कि जिस युग में उर्दू गद्य में सिर्फ़ कुछ धार्मिक लेख ही सामने आ सके थे, कोई साहित्यिक कृति नहीं थी, वजही ने सबसे पहले गद्य में अपनी साहित्यिक रचना 'सबरस' प्रस्तुत की।

यह एक सच्चाई है कि किसी साहित्यिक रचना का अपने युगीन सत्य से असंबद्ध होना असंभव है। इस युगीन सत्य के दो आयाम हैं। एक व्यापक, दूसरा सीमित।

'सबरस' में व्यापक सत्य का प्रभाव ज़्यादा है। इसलिए इसमें मानवीय भावों का स्पर्श ज़्यादा से ज़्यादा मिलता है। इसमें भौगोलिक स्थितियाँ बहुत कम हैं और जो भी हैं उनमें सिर्फ़ कुछ को छोड़कर सार्वभौमिक हैं, किसी स्थान विशेष से जुड़ी नहीं। व्यापक सत्य में नैतिक आदर्श भी आ जाते हैं।

वजही के युग के सामाजिक जीवन में बादशाह का पद सर्वाधिक सम्माननीय था। बादशाह की तख़्तनशीनी के संबंध में हमें यह जानकारी प्राप्त होती है कि बादशाह तख़्त पर बैठता तो सिर पर छत्र की छाया होती। तख़्तनशीनी का ऐलान हर जगह होता, फ़रमान जारी किये जाते। राग-रंग की महफ़िलें सजती। शराब का दौर भी चलता। केवल विश्वासपात्र, शायर, क़िस्सागो, राजाज्ञा-वाचक, गायक, लतीफ़ा सुनानेवाले, हाज़िर जवाब लोग और सुकुमार सुंदरियों को ही राज-सभा में सम्मिलित होने का अधिकार था। संगीत और शराब के अलावा क़िस्सों के दौर भी चलते थे। विश्वासपात्र लोग नयी-नयी जानकारियाँ और सूचनाएँ भी बादशाह को दिया करते थे।

इसके अतिरिक्त वजही ने अपनी नीति को व्यक्त किया है जैसे - हिम्मत मर्दों का सिंगार, हिम्मतवाले को तलवार की चाट होती है, मर्द इब्नुलवक़्त[१] नहीं अबुलवक़्त[२] होता है। राम जब साहब हो तो हनुमान जैसा दास हो। संसार के विषय में वजही का दृष्टिकोण कमोबेश वही है, जो सूफ़ियों का था। कहता है :

"दुनिया ज्यूं दोपहर की छाँव । इस दुनिया कूं सिर है न पांव ।।
दुनिया दो दीस की मेहमान । यो तहक़ीक[३] कर जान ।।"

संसार के झूठे और लोगों का चित्रांकन भी वजही ने खूब किया है। वह अपने दौर के ज्योतिषियों और भिखारियों का चरित्र भी सामने रखता है।

दास्तान के अंत में इश्क़, अक़्ल को वज़ीर का पद सौंपते हुए अपनी तीन प्रिय वस्तुओं का ज़िक्र करता है - सुरा, सुंदरी और संगीत। 'सबरस' में निम्नलिखित वाद्य-यंत्रों के नाम मिलते हैं - कमाच, तंबूर, क़ानून, ऊद, डफ़, दायरा, चंग और रबाब।

रैयत अपने बादशाह को ज़िल्लुल्लाह और ख़लीफ़तुल्लाह कहती थी। बादशाह दूसरे देशों में अपने गुप्तचर भेजते थे। वक़्त ज़रूरत अपनी सीमाओं की नाकाबंदी भी की जाती थी। बादशाह की राज्य-परिषद् में पेशवा, दबीर, अमीर, ख़ान और वज़ीर शामिल थे। कहने का अभिप्राय यह है कि वजही ने तात्कालिक मूल्यों के बजाय शाश्वत मूल्यों को ही प्रमुखता दी है।

---

१. वह व्यक्ति जो अपने को समय के अनुसार ढाल ले, अवसरवादी।
२. वह व्यक्ति जो समय पर अपना अधिकार रखता हो।
३. शोध, सोच विचार।

'सबरस' अपने विषय और भाषा की दृष्टि से ऐसी कृति है जिसे उस दौर के संपूर्ण कृतित्व में सर्वाधिक महत्त्व मिला है। क्योंकि हर दृष्टि से यही एक ऐसी कृति है जिसे उस दौर को देखते हुए एक साहित्यिक रचना कहा जा सकता है।

वजही के इस कीर्तिमान से अनुमान किया जा सकता है कि इस्लामी धर्म-शास्त्रों के अतिरिक्त भारतीय भाषाओं से भी उसका गहरा जुड़ाव है। मराठी और गूजरी (गुजराती उर्दू) के साथ-साथ ग्वालियरी (ब्रजभाषा) के साहित्य का भी अध्येता है। अमीर खुसरो की हिंदी कविताओं से वह परिचित है। यह उल्लेखनीय है कि वह उर्दू (जिसे वह हिंदुस्तानी भाषा और भारतीयों की बोली के नामों से याद करता है) भी जानता है। अब जो व्यक्ति अरबी, फ़ारसी, ब्रजभाषा, गूजरी, उर्दू, मराठी आदि से वाक़िफ़ हो, कविता की बारीकियाँ समझता हो, प्रबुद्ध और अतिशय संवेदनशील हो, जाहिर है उसकी साहित्यिक अभिरुचि कितनी शालीन होगी। वजही की उदात्त अभिरुचि के प्रमाण में यह पुस्तक प्रस्तुत की जा सकती है।

हाफ़िज महमूद शीरानी 'सबरस' की भाषिक संरचना का जायज़ा लेने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि वजही संस्कृति और शिक्षा की दृष्टि से फ़ारसी रुझान का लेखक था। यही कारण है कि 'सबरस' में फ़ारसी पदावली, बंदिशों और मुहावरों की भरमार है। फ़ारसी उस्तादों और शायरों जैसे मौलाना रूम, सादी, खुसरो, हाफ़िज़, गैसू दराज़ और स्वयं वजही के फ़ारसी शे'रों की अधिकता है। अतएव 'सबरस' का गद्य न केवल फ़ारसी शैली और रोज़मर्रा मुहावरे के क़रीब है बल्कि व्याकरणिक संरचना (धातु, क्रियारूप, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि) की दृष्टि से भी फ़ारसी से बहुत गहरे में प्रभावित है। यह प्रभाव इस क़दर गहरा है कि कई स्थलों पर जब तक हम फ़ारसी मुहावरे से परिचित न हों, मूल पाठ का अर्थ जान पाना कठिन हो जाता है।

अतएव 'सबरस' की भाषा प्राचीन हिंदी परंपरा और फ़ारसी रिवायत का संधि-स्थल है तथा हिंदी रूप-रस और फ़ारसी रंग का संगम है।

सबरस : एक रूपक-कथा

सुल्तान अब्दुल्ला कुतबशाह के इस आग्रह पर कि 'इंसान के वुजूद ही में इश्क़ का बयान करना' 'सबरस' की रचना होती है। इस आग्रह में फ़ारसी के 'क़िस्सा-ए-हुस्न-ओ-दिल' की ओर एक सूक्ष्म संकेत भी निहित है।

इस कथा में मनुष्य का अस्तित्व ही इस महाभारत का कुरुक्षेत्र है या इस लड़ाई की युद्धभूमि है। जहाँ मनुष्य स्वयं अपने अस्तित्व से लड़ता है। एक ओर उसकी भावनाओं की उद्दाम तरंगें मोर्चा लगाती हैं उसकी बुद्धि, विवेक और दूरदर्शिता की सेना सजी होती है। वास्तव में यह युद्ध मनुष्य के अंतर्मन की कशमकश ही है। युद्ध में 'इश्क़'

को विजय मिलती है और 'अक्ल' की पराजय। लेकिन शीघ्र ही दोनों के बीच संधि हो जाती है। 'अक्ल' को वज़ीर के पद पर नियुक्त किया जाता है। इस तरह 'इश्क़' को 'अक्ल' जैसा साथी मिल जाता है। इस प्रकार मनुष्य के अस्तित्व में एक संतुलन और पूर्णता आ जाती है। इस प्रकार युद्ध की समाप्ति मनुष्य के अंतर्द्वंद्व के खात्मे पर होती है। तदुपरांत आत्मिक शांति, ब्रह्मज्ञान के सोपान पार करता हुआ मनुष्य आत्म-परिचय करता है फिर ईश्वर के परिचय की मंज़िल की ओर बढ़ता है। वजही ने इस 'बयाने इश्क़' में बड़ी कलात्मकता से काम लिया है तथा मनुष्य के भावों और मनोविकारों को मानवीय चरित्रों के साँचे में ढालकर 'सबरस' को एक उत्कृष्ट रूपक-कथा का रूप प्रदान किया है।

रूपक कथा मे अमूर्त भावों को मूर्त रूप मे प्रस्तुत किया जाता है। दूसरे शब्दों में अप्राकृतिक भावों को प्राकृतिक भावो में रूपांतरित किया जाता है। उन्हें मानवीय लिबास पहनाया जाता है। जैसे 'सबरस' में इश्क़, अक्ल, हिम्मत, मेहर, वहम आदि मनोभावों को मानवीय चरित्रो में ढाल दिया गया है।

क्योंकि रूपक को संकेतों में प्रस्तुत किया जाता है और वास्तविक प्रयोजन की अभिव्यक्ति प्रतीको के माध्यम से की जाती है, इसलिए रूपक-कथा के एक ही समय में दो आयाम होते हैं – एक आध्यात्मिक अर्थात् आंतरिक और नित्य, दूसरा लौकिक अर्थात् वाह्य और अनित्य। दूसरे शब्दों में आध्यात्मिक अर्थ के विभिन्न पहलुओं को लौकिक शरीर के रूप मे मूर्त कर दिया जाता है। और इन व्यक्तियों की क्रिया एवं व्यवहार से आध्यात्मिक अर्थ पैदा होते हैं। रूपक-कथा में लौकिक क्रियाओं के पीछे आध्यात्मिक भाव छुपे रहते हैं। यदि लौकिकता का आवरण उठ जाये तो सत्य का उद्घाटन हो जायेगा। इसलिए रूपक-कथा का अध्ययन करते समय इसके लौकिक तथा आध्यात्मिक दोनों पहलुओं पर नज़र रखनी चाहिए।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनोभावों को साकार नहीं किया जाता बल्कि उन्हें पशु-पक्षियों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार कोई पशु या पक्षी किसी मनोभाव का प्रतीक बन जाता है। ऐसी स्थिति मे पशु और पक्षी मनुष्य की भाँति बोलते है। और वाद-विवाद में हिस्सा लेकर विभिन्न समस्याओं पर विचार व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए इश्क़ और अक्ल मनोभाव हैं, उनका मानवीकरण करने के बजाए इश्क़ को कोयल और अक्ल को बुलबुल कल्पित कर लिया। अब कोयल और बुलबुल की बातचीत इश्क़ और अक्ल की विशेषताओं को प्रकट कर सकती है।

रूपक-कथा का एक रूप यह भी है कि मनोभावों को देवी-देवताओं के रूप में प्रकट किया जाये। जैसे यूनानी मिथकों में प्रेम के देवता क्यूपिड और सौंदर्य की देवी

वीनस को पात्रों के रूप में प्रस्तुत किया जाये या हिंदू मिथको में ज्ञान की देवी सरस्वती और युद्ध की देवी चंडी को ज्ञान और युद्ध का प्रतीक बना दिया जाये।

रूपक-कथा के लिए यह भी आवश्यक है कि उसे एक वृत्तांत के रूप में प्रस्तुत किया जाये। इसलिए एक रूपक-कथा के संघटक तत्त्व वही होते है जो कि एक वृतांत के होते हैं। अर्थात् कथानक, पात्र, देशकाल और वातावरण आदि। 'सबरस' अपनी कथा-संरचना की दृष्टि से भी एक सफल रूपक-कथा है।

रूपक-कथा की एक अनिवार्य विशेषता यह भी है कि इसमें किसी-न-किसी नैतिक या धार्मिक सिद्धांत या दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति दी जाती है। इससे कोई-न-कोई नैतिक निष्कर्ष अवश्य निकाला जा सकता है। इसलिए रूपक-कथा और दास्तान में अंतर है। दास्तान का उद्देश्य केवल पाठकों की दिलचस्पी, मनोरंजन और बुद्धि-विलास है। जबकि रूपक-कथा का उद्देश्य नैतिक शिक्षा और श्रेष्ठ आध्यात्मिक तथा धार्मिक मूल्यों को संप्रेषित करना है।

चौथी और पांचवीं शताब्दी में ईसवी में जब दार्शनिक बुद्धिवाद का वर्चस्व बढ़ा उसके साथ ही रूपकात्मक अभिव्यक्ति का आरंभ हुआ। होमर, वर्जिल और बाइबिल के आलोचकों ने दार्शनिक बुद्धिवाद के आक्रमण से धर्म को बचाने के लिए रूपकात्मक अभिव्यक्ति का आश्रय लिया। इसलिए रूपकात्मक अभिव्यक्ति अनिवार्यतः धार्मिक सिद्धांतवाद (Relegious Fundamentalism) को स्वीकार करने का एक तरीक़ा है। धर्म-वेत्ताओं ओर व्याख्याकारों ने रूपकात्मक अभिव्यक्ति के दो भेद किये हैं -प्राकृति और नैतिक।

एक मिश्रित रूपक-कथा भी होती है जो गोपनीय भावों (Burried Thought) को प्रकट करती है।

रूपक-कथा और मानवीकरण (Personification) में भी अंतर है। यद्यपि मानवीकरण में भी मनोभावों ओर मनोविकारों को मानवीय विशेषताओं के साथ मूर्त किया जाता हे। लेकिन रूपक-कथा की भाँति इसके दोहरे आयाम नहीं होते। तुरंत इसकी पहचान हो जाती है जबकि रूपक-कथा की पहचान जटिल होती है।

'सबरस' का 'क़िस्सा-ए-हुस्नो दिल', बकौल प्रो. अज़ीज़ अहमद, कहानियों के एक ऐसे विश्वव्यापी सिलसिले से सम्बन्धित है जो ईरान से लेकर पश्चिम एशिया तक फैला हुआ है। यह सिलसिला खोज और जिज्ञासा की कहानियो का है। कभी यह खोज फूल की होती है कभी अप्रतिम रूपसी की। यह एक प्रकार से प्रेम, जीवन या सौंदर्य के रहस्य की खोज है। कभी खोज के क़िस्सों में नायक का उद्देश्य कोई पवित्र या दुर्लभ पत्थर है जिसमें ऐश्वर्य और वैभव के रहस्य छुपे हुए हैं खोज की कहानियों की

एक धारा वह है जिसमें आबे-हयात का झरना है। यह खिज्र और सिकंदर के क़िस्सों के अलावा यहूदी और इस्लामी साहित्य में भी मिलती है। फूल ओर आबे-हयात के इस झरने में निश्चय ही संबंध है। 'सबरस' के क़िस्से में आबे-हयात के झरने का नाम 'दहन' है। पाश्चात्य साहित्य में भी इस तरह का झरना मिलता है जिसमें कई जादुई विशेषताएँ हैं।

प्रो. अज़ीज़ अहमद के अनुसार रूपक-कथाओं को इस्लाम के मध्यकाल मे ज़्यादा प्रमुखता दी गयी। 'सबरस' के बाद उर्दू में रूपक-कथाएँ मिलती तो हैं लेकिन वे इस विधा के ह्रासय को लक्षित करती हैं। 'सबरस' के बाद उर्दू मे इस कोटि की कोई दूसरी रूपक-कथा नहीं दिखाई देती।

'सबरस' के क़िस्सा-ए-हुस्नो दिल के पात्र न पशु हैं, न व्यक्ति और न ही देवी देवता। बल्कि मानवीय भावों और मनोविकारों तथा मानसिक अंतर्द्वंद्व की जीती-जागती प्रतिमाएँ हैं। इस दृष्टि से हम इसे एक विशिष्ट रूपक-कथा कह सकते हैं।

शुद्ध रूपक-कथा में यह प्रयास अवश्य किया जाता है कि प्रेमी और प्रेमिका को यथासंभव उनके गुणों को ध्वनित करनेवाले बहुअर्थक नाम दिये जायें। क्योंकि दोनो की कशमकश से ही रूपक की रचना संभव होती है। यह रूपक को शुद्ध से शुद्धतर बनाने का प्रयास है।

'फ़ताही' ने 'दस्तूरे उश्शाक़' के अत में खिज्र के माध्यम से रूपक-कथा के ऊपर से लौकिकता का आवरण हटा दिया है और वास्तविकता (सत्य) के दर्शन करा दिये हैं। मौलवी अब्दुल हक़ इसे 'रूपक-कथा की संपूर्णता' क़रार देते हैं। और बहुत सराहते हैं। डॉ. सुहेल बुखारी भी मौलवी साहब से सहमत हैं। लेकिन प्रो. अज़ीज़ अहमद इसे कला के नुक्ता-ए-नज़र से दोष मानते हैं। मै प्रो. अज़ीज अहमद की राय से सहमत हूं।

रूपक-कथा के लिए यह आवश्यक है कि उससे किसी नैतिक समस्या का समाधान हो या किसी दार्शनिक विचार को अभिव्यक्ति मिले। इस निकष पर भी 'सबरस' खरी उतरती है। दरअसल 'सबरस' का संबंध तसव्वुफ़ (अध्यात्मवाद) से है। वजही ने रहस्यवादी ढंग से तसव्वुफ़ के मसलों पर रोशनी डाली है। इसीलिए इसके सारे पात्र दोहरा व्यक्तित्व रखते हैं। अपने लौकिक रूप में ये पात्र किसी क़िस्से के पात्र जान पड़ते हैं। लेकिन वास्तव में ये सारे पात्र तसव्वुफ़ की दुनिया के निवासी हैं।

दिल – डॉ. सलाम संदेलवी के अनुसार एक साधक का दिल है जिसका संबंध खुदा से है। डॉ. रफ़िया सुल्ताना की दृष्टि में दिल जो इस दास्तान का नायक है, सूफ़ी व्याख्या के अनुसार 'अंतर्मन' है। डॉ. मंज़र आज़मी के अनुसार, दिल सूफ़ी सिद्धांतों के

आधार पर 'अंतर्मन' है जिसमें ईश्वरीय सौंदर्य का निवास है। दिल में ईश्वरीय ज्योति का वास भी है और प्रेम का ठिकाना भी।

आबे-हयात प्रो. अजीज़ अहमद के अनुसार यह ठीक शरीयत है। प्रो. रफ़िया सुल्ताना के विचार से सूफ़ी सिद्धांतों के आधार पर यह 'बक़ा' (नित्यता, अनश्वरता) है। डॉ. मंज़र आज़मी का कहना है कि 'बक़ा' ही है जिसे पाकर दिल 'अपूर्ण' से 'पूर्ण' हो जाता है। भौतिक जीवन में समाप्त होकर अनश्वर और अमर हो जाता है। यह आबे-हयात सदुपदेश के माध्यम से मन में प्रवेश करता है। वाणी का संबंध जिह्वा से ही नहीं दिल से भी है। जो साधना के सोपान पार करता है। इसके सामने से लौकिक आवरण एक-एक कर हटते चले जाते हैं।

हुस्न – खुदा का जल्वा या ब्रह्म से साक्षात्कार। दिल को हुस्न की तलाश रहती है (रफ़िया सुल्ताना) हुस्ने अख़्लाक या नैतिक सौंदर्य (अज़ीज़ अहमद)।

शहर दीदार – सूफ़ियों के अनुसार हज़रत या खुदा से साक्षात्कार (रफ़िया सुल्ताना)।

अक्ल – पश्चिम का बादशाह। पश्चिम की सारी विशेषताएँ अक्ल में है। इसकी तुलना में पूर्व की विशेषताएँ ज्ञान, भावना और प्रेम हैं। इसलिए वजही ने इश्क़ को पूर्व का बादशाह कहा है। अक्ल का वज़ीर 'वहम' और सिपहसालार 'सब्र' है। इश्क़ का सिपहसालार 'मेहर' मेहरे-इलाही या ईश्वर की कृपा है। अर्थात् ईश्वर की कृपा बिना प्रेम सफल नहीं हो सकता। 'हुस्न' की सखी 'लट' है। 'ख्याल' हुस्न का गुलाम (चित्रकार) है। 'खाल' भी हुस्न, का गुलाम है। ख़ाल का अभिप्राय अस्तित्व-बोध है।

नाज़ – हुस्न की दाई! नाज़ हुस्न की एक विशेषता है। हुस्न का पालन-पोषण नाज़ की देख-रेख में होता है। नाज़ न हो तो हुस्न, आशिक़ों को आज़मायश में कैसे डाले ? (मंज़र आज़मी)

ग़ैर – इब्लीस (शैतान या माया) है जो साधक को साधना के मार्ग से भटकाता है। (रफ़िया) वह कुवृत्ति है जो साधक को विषय-वासनाओं में लिप्त कर ईश्वरीय सौंदर्य से मिलने में रुकावट डालती है। (मंज़र)

रक़ीब – शैतान है जो साधक को प्रेम-मार्ग पर चलने से रोकता है और भ्रमित करता है। (मंज़र)

नज़र –दिल का जासूस :

ख़िरद के पास ख़बर के सिवा कुछ और नहीं
तेरा इलाज नज़र के सिवा कुछ और नहीं

– इक़बाल

गम्ज़ा – नज़र का भाई। मानमोहक शहर दीदार में इसका निवास है। इसका काम संतुलन बिगाड़ना है। (रफ़िया) ज़र्क़, जाहिद और तौबा सांसारिक उपासनाओं के प्रतीक हैं। जो कम पवित्र होती हैं। सूफ़ी सांसारिक उपासनाओं का गौण दर्जा देते हैं। (मंज़र आज़मी)

वफ़ा – सिपहसालार मेहर की बेटी। यथा नाम तथा गुण। हुस्न और दिल के बीच एक कड़ी है।

शहर तन – मानवीय अस्तित्व। प्रेम और बुद्धि की रणभूमि।

हिज्रा का कोट – जिसमे दिल को क़ैद किया जाता है हिज्र अर्थात् प्रेम में वियोग की स्थिति।

शहर दीदार में बाग़ 'रुखसार' है और उसमें 'विसाल' नामक महल है। विसाल अर्थात, प्रेम में सयोग की स्थिति।

संक्षेप में, 'सबरस' के तमाम क़िस्से पर रहस्यवाद का हल्का-सा धुँधलका छाया रहता है। इस रूपक-कथा में वजही ने अमूर्त (Abstracts) को मानवीय रूप में प्रस्तुत कर दिखाया है। जैसे इश्क़, अक़्ल, नामूस, हुस्न, ख्याल, गम्ज़ा और तोबा वग़ैरह। इन चीज़ों को हम केवल महसूस कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त वजही ने कुछ मूर्त चीज़ों (Concretes) को भी मानवीय रूप में प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिए, दिल, ज़ुल्फ़, क़ामत आदि को उसने मानव-शरीर प्रदान किया है।

डॉ. ज्ञान चद 'सबरस' की गणना उर्दू की तीन युगांतरकारी कृतियों में करते हैं। दकन में 'सबरस', दिल्ली में 'बाग़ो-बहार' और लखनऊ में 'फ़साना-ए-अजायब'। वजही में किसी हद तक मीर अम्मन और सखर की खूबियाँ समा गयी हैं। 'बाग़ो-बहार' सहज है, 'फ़साना-ए-अजायब' बोझिल और रंगीन। लेकिन 'सबरस' दोनों के रसों का निचोड़ है। 'सबरस', 'फ़साना-ए-अजायब' की तरह रंगीन और सुसज्जित है लेकिन 'फ़साना-ए-आज़ाद' की तरह गूढ़, बोझिल और अरबी-फ़ारसी से लदी हुई नहीं है। यहाँ क़ाफ़िया है, उपमा है, प्रतीक है लेकिन अर्थ की खींचतान नहीं। वजहीं के यहाँ काव्यात्मक वाक्यों को सिलसिला कही ज़्यादा है। वह सिर्फ़ सजीले वाक्यों पर बस नहीं करता, कम से कम पाँच-सात क़ाफ़िए ज़रूर लाता है। वह किसी की विशेषताओं का वर्णन करता है तो एक-दो विशेषताओं से उसका जी नहीं भरता, चार-पाँच विशेषताएँ ज़रूर बताता है। इस तरह 'सबरस' के अधिकांश वाक्य विस्तृत हैं और उसमें अनेक छोटे-छोटे सानुप्रास वाक्यों का जाल बिछा रहता है, जैसे :

> "करामत कते सो अक़्ल तमाम, जे कुछ दुनिया में हुआ सो सब अक़्ल का काम, अक़्ल ती हुआ सब हलाल होर हराम, अक्ल ती पकड़्या फ़र्क़

ख़ास होर आम, अक्ल ती रखे हरेक का नाम, नहीं तो कां था सुबह होर शाम, शीशा होर जाम, पिस्ता बादाम, सैयाद दाम, साहब गुलाम।"

गद्य में दस-दस क़ाफ़ियों की मिसाल 'सबरस' के अलावा उर्दू की किसी पुस्तक में नहीं मिलेगी। यहाँ यह बात मान लेनी चाहिए इतने बहुत से सानुप्रास वाक्य वज़न बिगाड़ देते हैं या गति भंग कर देते हैं।

विस्तारप्रियता वजही के स्वभाव में है। उसके यहाँ एक शब्द और अनेक अर्थ वाली बात नहीं, बल्कि एक अर्थ और अनेक शब्दों की कोशिश है। वह एक फूल के मज़मून को सौ ढंग से बाँधने का क़ायल है। उसका उद्देश्य गद्य पर अपना अधिकार सिद्ध करना है।

प्रो. अज़ीज़ अहमद के अनुसार रूपक-कथा इस्लाम के मध्यकाल की उपज है। जब इस्लामी सभ्यता का ह्रास शुरू हुआ और पाश्चाय सभ्यता की जीत से पहले उसका स्थान लेनेवाली और कोई जीवित संस्कृति और सभ्यता न रही तो रूपक-कथाओं का अंत हो गया और तिलिस्मी दास्तानें ज़ोर पकड़ने लगीं। जिज्ञासा का स्थान तिलिस्म ने ले लिया।

डॉ. ज्ञान चंद ने सही कहा है उर्दू गद्य की आरंभिक सदियों के अंधेरे में 'सबरस' रोशनी की मीनार की तरह चमकती है। अतएव, वजही की रूपक-कथा का जवाब न उससे पहले था और न उसके बाद हो सका।

उर्दू निबंध के प्रवर्तक

कुतबशाही दरबार में हुए मुल्ला वजही और मुल्ला ग़व्वासी के साहित्यिक विवाद का परिणाम है – उर्दू गद्य की पहली कृति!

प्राचीन उर्दू का यह पहला ऐतिहासिक साहित्यिक विवाद था जो कमोबेश तीस वर्ष तक जारी रहा। मुहम्मद कुली कुतबशाह के निधन (१६१२ ई.) से दो वर्ष पूर्व मुल्ला वजही की मस्नवी 'कुतब मुश्तरी' से इस विवाद की शुरूआत होती है। 'सबरस' इसका चरम-बिंदु भी था और समापन भी। मुल्ला ग़व्वासी ने दरबारी या राजनीतिक मोर्चे पर मुल्ला वजही को पराजित किया अर्थात् ग़व्वासी, अब्दुल्ला कुतबशाह के दरबार में मलिकुश्शुअरा (कवि सम्राट) ही नहीं, शाही दूत भी बन गया। लेकिन साहित्यिक मोर्चे पर वजही अपराजेय ही रहा और इसका सुबूत है 'सबरस'।

'सबरस' में 'नीति एवं उपदेशों का संग्रह' (मौलवी अब्दुल हक़) ही उर्दू गद्य साहित्य का उद्‌गम है। मुल्ला वजही के ये इकसठ लेख मौलवी अब्दुल हक़ साहब की नीति एवं उपदेशों का संग्रह वाली बात को ग़लत साबित करते हैं क्योंकि इन लेखों में धर्म एव नैतिकता से संबंधित सिर्फ़ अठारह लेख हैं, शेष व्यक्ति, समाज और मानवीय प्रकृति से संबंधित हैं। मुल्ला वजही ने अपने प्रतिद्वंद्वी मुल्ला ग़व्वासी को साहित्यिक मोर्चे पर अपने इन्हीं लेखों के माध्यम से नीचा दिखाया है । ग़व्वासी सिर्फ शायर था, वजही शायर और गद्यकार भी। वजही ने किसी हद तक लेखों की रचना में पांडित्य प्रदर्शन से भी काम लिया है। और अपनी विद्वता को जताया है। जो उनके आपसी विवाद की पृष्ठभूमि में अनिवार्य भी था। बहरहाल इससे दो लाभ हुए। एक तो यह कि वजही अपने साहित्यिक मोर्चे पर सफल हुआ, समादृत हुआ। दूसरे उर्दू गद्य को एक नयी विधा मिल गयी। इस प्रकार वजही और ग़व्वासी की साहित्यिक बहसों की देन है हमारा निबंध-साहित्य।

लेकिन डॉ. सैयदा ज़ाफ़र ने मुल्ला वजही ने निबंधो को 'निबंध-नुमा' और प्रो. अब्दुल कादर सरवरी ने उर्दू निबध के 'प्रथम चिह्न" का नाम दिया है :

सरसरी तुम जहान से गुज़रे
वरना हर जा जहान-ए-दीगर था!

अलबत्ता डॉ. सैयदा ज़ाफर की यह बात सही है कि 'ये रचनाएँ अलग-अलग हैसियत नहीं रखती हैं।' इसलिए हम इन निबंधों को वजही और ग़व्वासी के साहित्यिक विवादों की उपज तो कह ही सकते हैं।

मुल्ला वजही विश्वसाहित्य के प्रथम निबंधकार माइकल डि मोन्टेन (Michael De Montaigne) (१५३३ से १५९२ ई.) अंग्रेज़ी निबंध के जनक फ्रांसिस बेकन (Francis Bacon) (१५६१ से १६२६ ई.) का समकालीन था। और विश्व स्तर पर भी वजही का तीसरा स्थान था। दूसरे शब्दो में, पहले स्थान पर फ्रेंच निबध, दूसरे पर अंग्रेज़ी निबंध और तीसरे पर उर्दू निबंध। अंग्रेज़ी निबंध तो फ्रेच निबंध साहित्य के अनुसरण पर ही अस्तित्व में आया इसलिए इसे तो हम फ्रेंच निबध साहित्य की देन कह सकते है लेकिन उर्दू निबंध को फ्रांसीसी या अग्रेज़ी साहित्य की देन समझना भ्रामक और निराधार है।

सैयद सैफ़ी मुर्तज़ा, डॉ. वहीद कुरैशी, डॉ. आदम शेख़ और डॉ. ज़हीरउद्दीन मदनी उर्दू निबंध को अंग्रेज़ी साहित्य की देन समझते हैं। अतएव इस प्रकार के मतों ने उर्दू निबंध को दिनो तक अंधेरे में रखा और एक ग़लत दृष्टिकोण को जन्म दिया कि उर्दू के प्रथम निबंधकार सर सैयद अहमद ख़ां, मुहम्मद हुसैन आज़ाद या मीर नासिर अली थे। सैयद सैफ़ी मुर्तज़ा, और मौलाना नियाज़ फ़तहपुरी सर सैयद को उर्दू का पहला निबंधकार ठहराते हैं। डॉ. आदम शेख कभी सर सैयद को, कभी मुहम्मद हुसैन आज़ाद और कभी मीर नासिर अली को पहला निबंधकार होने का गौरव प्रदान करते हैं। क्योकि यह दृष्टिकोण भी ग़लत अनुमान पर आधारित है इसलिए सही नहीं। उर्दू निबंध साहित्य अपनी एक स्वतंत्र पहचान रखता है। सर सैयद के दौर मे उर्दू निबंध ने अंग्रेज़ी काफ़ी लाभ उठाया लेकिन यह कहना अनुचित है उर्दू निबंध अंग्रेज़ी से आया। हमारा समग्र निबंध साहित्य अपना है। वजही उर्दू निबंध का प्रवर्तक है। जिस समय विश्व-साहित्य मे निबंध विधा ने जन्म लिया, कमोबेश उसी समय हमारा निबंध भी अस्तित्व में आया।

'सबरस' से लिये गये मुल्ला वजही के ये इकसठ निबंध हैं, जिनके अधिकांश शीर्षक इकहरे किंतु बहुस्तरीय हैं, विश्व-निबंध साहित्य की कसौटी पर भी खरे उतरते हैं। वजही के मनीषी होने के प्रमाण में भी ये निबंध प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इनके शीर्षक निम्नलिखित हैं :

१. ख़ुदा, २. नमाज़, ३. ख़ुदा की ख़ुदाई, ४. मोमिन, ५. अनलहक़, ६. अनलइश्क़, ७. तालिब होर तलब, ८. नफ़्स, ९. नेकी, १० फ़क्र, ११. शुक्र होर सब्र, १२. इश्क़ होर इफ़नि, १३. मेराज़, १४. क़तरा होर दरिया, १५. जात़ होर सिफ़ात, १६. आशिक़ होर आब्दि, १७. पादशाहां, १८. पादशाही, १९. मैदान जंग, २०. हवा, २१. मर्द, २२. हिम्मत, २३. सख़ावत, २४. नफ़र और साहब, २५. दुनिया, २६. मां-बाप, २७. भले-बुरे, २८. दाना होर नादाने, २९. बड़ियां होर नन्हियां, ३०. झूठे-सच्चे, ३१. दाने

दीवाने, ३२. राज़, ३३. दुश्मन, ३४. तमा, ३५. मंगनहार, ३६. बेगी, ३७. होशियारी, ३८. मुनज्जिम, ३९. दुनिया होर आख़िरत, ४०. दिल, ४१. अक्ल, ४२. मशवरत, ४३. इश्क़, ४४. हुस्न, ४५. राग, ४६. शराब, ४७. आशिक, ४८. माशूक, ४९. इश्क़ होर हुस्न, ५०. इश्क़ जलना है, इश्क़ तपना है, ५१. चोरी सूं इश्क़ खेलना, ५२. आशिक़ की आँख का पानी, ५३. अँखियाँ, ५४. ख्वाब, ५५. दीदार, ५६. विसाल, ५७. औरत, ५८. मर्द-औरत, ५९. असील औरताँ, ६०. असील लोग, ६१. सौतिया डाह।

विषय की दृष्टि से इन निबंधो का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है :

१. मानवीय प्रकृति से संबंधित	१८	
२. तसव्वुफ़	११	
३. इश्क़	११	
४. बादशाही से संबंधित	७	निबंध
५. धर्म	७	
६. समाज	५	
७. शराब आदि	१	
८. ललित कलाएँ	१	
कुल संख्या	६१	

इससे स्पष्ट है कि वजही ने सर्वाधिक निबंध मानवीय प्रकृति से संबंधित लिखे है। मज़हबी और सूफ़ियाना निबंध केवल अठारह हैं। और यदि प्रेमसंबंधी (इश्क़िया) निबंधो को भी इनमें शामिल कर लें तो भी इनकी संख्या आधे से कम ही रह जायेगी। मौलवी अब्दुल हक़ ने सव्यग्य इन्हे 'नीति और उपदेशों का संग्रह' कहा है क्योंकि इन निबधों ने 'क़िस्सा-ए-हुस्नो-दिल' में बहुत बड़ा दोष यह पैदा कर दिया था कि कथा-क्रम की कड़ियाँ एक-एक कर बिखर गयीं।

उर्दू निबंध के इतिहास की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि हमारे शोधकर्ताओं और आलोचकों ने जाने या अनजाने तौर पर अंग्रेज़ी निबंध को ही उर्दू निबंध का मूल स्रोत मानकर उर्दू निबंध से आँखे मूँद लीं। इसलिए अंग्रेजी शब्द Essay, जो फ्रांसीसी शब्द Essai (अर्थ : प्रयास) से संबंधित है, उर्दू निबंध के आरंभ और विकास की भ्रामक परंपरा बनकर रह गया है। इसीलिए उर्दू निबंधों के संग्रह और संपादनकर्त्ता अंग्रेज़ी निबंध की पृष्ठभूमि बताने के बाद उर्दू निबंध की चर्चा शुरू करते हैं।

आतिश बुलंद दिल की न थी वरना ऐ कलीम
यक शोला, बर्क़ रिख़र्मने सद कोह तूर था!

निबंध के लिए प्रयुक्त उर्दू शब्द 'इंशाइया' को लेकर दो मत मिलते हैं। एक डॉ. सैयद मुहम्मद हसैन का, दूसरा डॉ. वहीद कुरैशी का। डॉ. वहीद कुरेशी कुछ भ्रमित लगते हैं। वह लिखते हैं कि "इंशाइया का शब्द सबसे पहले विशेष अर्थ में संभवतः महदी हसन ने इस्तेमाल किया।" लेकिन वास्तविकता यह है कि महदी हसन ने 'इंशाइया' का शब्द सिरे से इस्तेमाल ही नहीं किया। अलबत्ता 'आर्टिकल' और 'मज़मून' शब्द उनके यहां मिलते हैं। महदी अफ़ादी ने एस्से को 'साहित्य की पूँजी' का नाम दिया है। उन्होंने 'इंशा' शब्द का साहित्य के अर्थ में भी प्रयुक्त किया है। डॉ. सैयद मुहम्मद हसनेन कहते हैं, "एक विधा के रूप में निबंध को सबसे पहले डॉ. अख्तर उरेनवी ने प्रतिष्ठित किया है। यह १९४२ ई. की बात है।" लेकिन इसके बावजूद डॉ. अख़्तर भी अंग्रेज़ी एस्से की भूल-भुलैया से बाहर नहीं निकल सके।

सोलहवीं शताब्दी ईसवी का एक फ्रांसीसी साहित्यकार माइकल डि मोन्टेन निबंध विधा का जनक माना जाता है। आरंभ में मोन्टेन ने पारंपरिक शैली में निबंध लिखे। बाद में उसने अपनी स्वतंत्र राह बना ली। उसने विभिन्न विषयों पर हल्के-फुल्के और दार्शनिक निबंध लिखे। मोन्टेन ने अपने आरंभिक निबंधों के बारे में लिखा है :

"मैने इन निबंधों मे अपने-आपको व्यक्त किया है।"

अंग्रेज़ी में निबंध नाम की कोई विधा नहीं थी। अतः जॉन फ्लोरियो (John Florio) ने पहली बार मोन्टेन के फ्रांसीसी निबंधो का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। सत्रहवीं शताब्दी में फ्रांसिस बेकन ने पहली बार अंग्रेज़ी भाषा में अट्ठावन निबंध १५९७ से १६२५ ई. के बीच लिखे। बेकन के निबंधों में उर्दू ग़ज़ल की-सी रहस्यात्मकता, सांकेतिकता, शब्द-लाघव और गांभीर्य है। भाषा-शैली में वक्रता और व्यंजना है। इसलिए इन निबंधों के कुछ वाक्य कहावतों के रूप में प्रचलित हो गये हैं। बेकन के निबंधों में जीवन की आलोचना, संकोच, चिंतन की गहराई और दार्शनिक तत्त्व के साथ रोमानियत है। बेकन के शब्द हैं :

> "निबंध ऐसी संक्षिप्त रचना है जिसमें बिना किसी जिज्ञासा और खोज के कोई वास्तविकता प्रकट हो जाये।"

मुल्ला वजही के निबंधों पर मोन्टेन और बेकन के कथन पूरी तरह सही उतरते हैं।

जिस प्रकार पुरानी इमारतों में जहाँ-तहाँ पीपल के पेड़ उग आते हैं और बढ़ते ही दीवारों में भयानक दरारें डाल देते हैं, अपने अस्तित्व को बचाकर दीवार को धराशायी कर देते हैं। कुछ ऐसा ही वजही के इन निबंधों ने 'क़िस्सा-ए-हुस्नो दिल' के साथ किया है। विचित्र बात है कि 'सबरस' का सबसे बड़ा दोष ही एक नयी विधा के आविर्भाव

का कारण बन गया। ज़ाहिर है कि इन निबंधों ने 'क़िस्सा-ए-हुस्नोदिल' के बीच जहाँ-तहाँ ऐसे छिद्र पैदा कर दिये हैं कि कथा-क्रम भंग हो गया है। इन निबंधों का स्वतंत्र अस्तित्व भी एक विशाल वृक्ष की भाँति टिकाऊ और मज़बूत है। यही वजह है कि ये क़िस्से के भीतर रहते हुए भी क़िस्से का अंग नहीं बन सके। इनकी अपनी अलग सत्ता है। इनको मात्र 'निबंधनुमा' या उर्दू निबंध के 'प्रथम चिह्न' कहकर सरसरी तौर पर गुज़र जाना निश्चय ही शोध और साहित्य को लेकर गहरी उदासीनता होगी।

मोन्टेन का यह कथन है कि :

> "सारा संसार मुझे अपनी रचना से पहचान सकता है और मेरे माध्यम से मेरी कृति से परिचित हो सकता है।"

यह कथन वजही के निबंधों पर भी चरितार्थ होता है। मुल्ला वजही, सुल्तान मुहम्मद कुली कुतुबशाह 'मानी' के दरबार में मलिकश्शुअरा था। मुहम्मद कुली 'जान-ए-आलम पिया' जैसा ही रंगीला था। उसने बारह इमामों की शुभ संख्या के अनुसार अपनी विशेष 'बारह प्यारियाँ' महल कोह-ए-तूर के बारह बुर्जों में रखीं और दूसरी अठारह प्यारियाँ कुतब मंदिर में। चंद्रमास के तीस दिन की तरह भोग विलास और प्रेमालाप के लिए ये तीस प्यारियाँ रखीं। जो पद्मिनी और चित्रणी थीं, राग-रंग और रूप-रस की कला सुंदरियाँ थीं। रंगीले बादशाह का रंगीला दरबारी शायर मुल्ला वजही भी विलासप्रिय था। सुरा और सुंदरी का रसिक था। ऐसे में कुतबशाही गोलकुंडा का वातावरण सुरा-सुंदरी, नृत्य-गायन और हास्य-परिहास से गूँजता रहता था। वजही ने 'राग' और 'शराब' निबंधों में कुतुबशाही ज़िंदादिली और ऐश परस्ती का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। इसके अलावा ये निबंध मौलिक सृजन के साथ-साथ नये चिंतन की प्रेरणा भी देते हैं। इनमें साहित्य की 'फुलझड़ी' ही नहीं, नये चिंतन और दृष्टि के जगमगाते जुगनू भी हैं।

भाषा-शैली की ताज़गी और नवीनता ने मुल्ला वजही के निबंधों में ऐसी प्रभाव-क्षमता पैदा कर दी है कि नीरस से नीरस विषय भी आर्द्र पुष्पदल की भाँति कोमल तथा मधुर संगीत की भाँति मनमोहक प्रतीत होते हैं। लेकिन इसका आशय यह कदापि नहीं वजही ने महज़ ख्याली तोता-मैना उड़ाये हैं। बल्कि उसने अपने दौर के व्यक्ति, समाज, शरीयत, मज़हब, और तसव्वुफ़ की आत्मा को अपने निबंधों में प्रतिष्ठित किया है। मानवीय प्रकृति के रहस्यों को तह-दर-तह खोलता है। इश्क़-ए-हक़ीक़ी व मजाज़ी के रहस्य को बेनकाब किया है। शाही दरबार के मिज़ाज से वाक़िफ़ कराता है। लेकिन इसके बावजूद वजही अपनी अभिव्यक्ति-शैली की प्राणवत्ता और व्यंजकता के कारण न केवल पाठकों की दिलचस्पी कायम रखता है बल्कि उन्हें उद्वेलित भी करता है।

मुल्ला वजही ने 'क़िस्सा-ए-हुस्नो-दिल' को लोककथा की सादगी और भोलेपन के साथ पेश किया है। लेकिन इन निबंधों में यह भोलापन, सौंदर्य बन जाता है और सादगी, शिल्प बन जाता है। वजही ने निबंधों के परिवेश को लोककथा की सतह से ऊँचा रखा है। इनमें चिंतन की गंभीरता है। लेकिन मुल्ला वजही ने लोककथा के भोलेपन को भी इनमें समाहित कर दिया है। इन निबंधों में वजही के प्रौढ़ एवं प्रखर चिंतन की धारा प्रवहमान है। क्योंकि ये निबंध उसने अपने जीवन के अंतिम दौर में लिखे थे, इसलिए इनमें वजही के अनुभवों का निचोड़ है। इसका एक-एक वाक्य शाश्वत कथन मालूम होता है। मिसाल के लिए :

> "आक़िल आगे तेज जानता, नादान पीछे ती पहचानता।"
>
> "दूसरा अगर दुश्मन हुआ तो सहल है, वले अपना दुश्मन अपे होना जेहल है।"
>
> "तूं अगर अपना दोस्त है, तो दुश्मन कूं पिछान, गुमान किया ख़ातिर रखना मियाने मियान।"
>
> "तूं अपनी हद पर चल जो दुसरे भी अपनी हद पर आवें, एते भी न होना मक्खियाँ तोड़-तोड़ खावें।"
>
> "जां साहब्री तेरी है, जां वादा है, किताब है, वहां जर्रे-जर्रे का हिसाब है।"
>
> 'मशहूर है कि जिधर हंडी डोई, उधर सब कोई।'

इस प्रकार अनुभव की आंच ने इन मोतियों को कुमकुमों की भाँति दीप्त कर दिया है। इससे इन निबंधों में गहराई और व्यापकता पैदा हो गयी है।

मुल्ला वजही के निबंधों में पाठक को सबसे पहले इनकी भाषा का अबाध प्रवाह अपनी ओर आकृष्ट करता है। वाक्यों में खनकता संगीत है। मिसाल के लिए :

> "पाच और काच दोनों हरे हैं, दानिशमंदां यहाँ फर्क़ करे हैं। काच मे क्या पाच का झलक झलकेगा। अगरचे हमरंग हैं किनका और मोती, वले मोती की जोत किनके में नीं होती। पानी एकचा जिंस है, सब जगा बहता बारा, पिये तो मालूम होता है, कईं मीठा कईं खारा।"

इन निबंधों में गागर में सागर तथा डबरे में समुद्र की विशेषता भी विद्यमान है। द्रष्टव्य है :

> "कहीच हैं कि अव्वल ख़्वेश़ बादा दरवेश। अताल खूब दसते सुन रहे जीवां, घर कूं दीवा तो मस्जिद कूं दीवा। यो वो क़िस्सा कि चार बुलाये, चौदह आये, सुनो! घर की रीत, बाहर के आकर खा गये, घर के गायें गीत। आशना जानना, बेगाने कूं पिछानना।"

सानुप्रास पदावली ने गद्य में कविता की लय उत्पन्न कर दी है। जैसे :

"दुनिया दो दीस की मेहमान
ठीक पिछान
नाम करे
कुछ काम करे
बी क्या फ़ुर्सत पावेगा
रहिया सो अंगन होर का डेरा
जो कुछ तूं लिया सो तेरा।"

यह मुल्ला वजही की कोई मुक्त-छंद की कविता नहीं, एक निबंध के टुकड़े हैं। फिर भी इसके कुछ वाक्य कहीं-कहीं अनजाने में शे'र ही बन गये हैं। मसलन :

पीरत पुतली क्यों खड़ती
नाऊं ती मस्ती क्यों चढ़ती
यो मुस्तग़नी वो मोहताज
यो सब शोख़ी वो सब नाज़
बास ती फूल ने शर्फ़ पाया
बास ती फूल, फूल कहलाया
फ़लवा टूट्या हरकत भागी
दुश्मनी सुती, दोस्ती जागी

वजही ने इन निबंधों में केंद्रीय भाव को कायम रखते हुए अवांतर बातें भी खूब कही हैं। बात से बात पैदा करना कोई वजही से सीखे। उसके विचार कहीं सबद्ध, कहीं असम्बद्ध, कहीं संक्षिप्त, कहीं विस्तृत, कहीं पूर्ण, कहीं अपूर्ण होते हैं और ये विचार रोज़मर्रा भाषा के मुहावरों की तड़क-भड़क के साथ व्यक्त होते हैं। ये मुहावरे ही इन असंबद्ध विचारों को एक आंतरिक व्यवस्था देते हैं। भाषा के स्वच्छंद और रंगारंग प्रयोगों के कारण निबंधों में इंद्रधनुष-से खिल उठते हैं। और इनकी सूफ़ी प्रकृति में माधुर्य पैदा हो जाता है। इनकी रोचकता और ताज़गी प्रेयसी के मुख की याद दिलाती है। इनकी सहजता और भोलापन लोक कथाओं के नायक एवं नायिका की प्रेम-वार्ता बन जाती है। भाषा और शैली का संगीत अलग जादू जगाता है और बहुत स्पष्ट है कि ये निबंध फ़्रांसीसी या अंग्रेज़ी साहित्य के प्रभाव में नहीं लिखे गये।

इन तथ्यों के आलोक में, मैं मुल्ला वजही को उर्दू निबंध का जनक और प्रवर्तक क़रार देता हूँ और उसके इन इकसठ निबंधों को उर्दू के पहले निबंध। इनकी रचना न फ़्रांसीसी भाषा के अनुसरण में हुई है और न ये अंग्रेज़ी निबंध के ऋणी हैं। ये उर्दू के पहले और अपने निबंध हैं, जो विश्व-निबंध साहित्य के मानदंड पर भी खरे उतरते हैं।

वजही ने मानवीय प्रकृति गहन तथा सूक्ष्म स्तरों को उद्घाटित किया है। इसकी एक झलक देखिए—औरत कुदरत का हसीन शाहकार है लेकिन उसकी फ़ितरत बहुत पेचीदा ओर नाक़ाबिले फ़ह्म[1] है। संस्कृत की कहावत है 'औरत के चलत्तर और मर्द के मुकद्दर को देवता नहीं समझ सके, इंसान की क्या बिसात!' ग़र्ज इस रेशमी गुत्थी को जब मर्द नहीं सुलझा सका यानी औरत की फ़ितरत को नहीं समझ सका तो उसने झुँझलाकर उसे शैतान सीरत[2], कमअक्ल मगर मक्कार करार दिया। वजही ने इसी रूप में औरत को प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिए :

> "औरत अजब है शकर, वले इस शकर में तमाम भरे हैं मकर। बोले हैं शर शैतान ती, मकर ज़बान ती। ख़ुदा अपनी पनाह में रखे। यो दोनों बलायां हैं, इस बलायां कूं कौन जीत सके ? इनो कूं समझाये किसी आक़िल कूं नईं बल। नादान ज़ात, इनो कूं तलुवों में अक्ल, समझ नईं करतीं काम, खोल बोले भी नहीं होता फ़ाम[3]। यो कौम बहुत ज़ाहिल, कम अक्ल इनो कूं हुई है मायल . . . . . औरत नाक़िस अक्ल[4] है यो क़दीम नक्ल है जेता अक्लमंदी हुई तो भी औरत की ज़ात, किया ऐतबार है औरत की बात। औरत अपने घर-बार कूं खूब है, औरत साग-सब्जी बिस्वार कूं खूब है . . . . . मेहबूब की बात फूल का पात। कुम्हलाए बार नहीं, बास निकल जाये बार नहीं। बाऊ बारा (वायु), बाऊ बारे पर क्यों करना पतियार (विश्वास) . . . . . औरत ख़ूब औरतां हैं, जिसकी खूबी है 'वद तवुल्नादी कालमादूम[5]', जिसकूं खुदा की पिछान, जिसका रोशन ईमान, जिसका बड़ा ज्ञान, चतुर, सुघड़, सुजान।"

(औरत)

लेकिन शायद फिर वजही को एहसास हुआ कि औरत को लेकर रुख़ कठोर हो गया है तो 'असील औरत' शीर्षक निबंध में इसका प्रायश्चित्त करता है। देखिए :

> "असील औरत अपने मर्द बग़ैर दूसरे मर्द को अपना हुस्न दिखान गुनाह कर जानतियां है। अपने मर्द कूं हर दो जहान में अपना दीन-ईमान कर पिछानतियाँ हैं।
>
> ज्यूं खुदा मानतियाँ हैं, अपने मर्द कूं मानतियाँ हैं। जो मर्द राज़ी तो खुदा राज़ी, जो मर्द राज़ी तो दुनिया दीन में औरत की सरफराज़ी[6]। जिने नख़रां में अंकड़ी, मर्द दिल हाथ नीं पकड़ी, अपनी चतराई कुछ फ़ाम नीं की, नकामी कुछ काम नीं की। वही औरत भली, जो कोई मर्द की कहे में चली।"

(असील औरत)

---

१. गूढ़, अज्ञेय २. शैतान जैसे स्वभाववाली ३. ज्ञान ४. अल्पबुद्धि ५. जो चीज़ कम है तो समझो है ही नहीं, यह अरबी की एक कहावत है। ६. यश प्रतिष्ठा।

फिर भी इससे पुरुष की श्रेष्ठता ही प्रकट होती है। फिर भी वजही ने स्त्री के प्रति अपने युगीन दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। स्त्री-पुरुष की स्वाभाविक काम-वासनाओं के साथ वजही ने पुरुष के कुछ स्वभावगत दोषों का उल्लेख भी किया है :

मर्द भंवर हज़ार फूल की लेवे बास
यो कीता पुकारती फिरेगी आसपास
मर्द कूं कोई रखवाल रख सक्या है
मर्द कूं कोई संभाल रख सक्या है

मर्द आप भावता, मर्द आपस्ता, मर्द कई औरत की कैद में रहता है, छोरियां छारियां अझों कुछ तन पड़या नहीं, भला-बुरा सिर खड़्या नहीं। मर्द का दिल हाथ लेना क्या जानतियां, क्या फ़ायदा मर्द कूं गुनवाले कर पिछीं पिछानतियां। ऐसे ढंगां ती मर्दां होते बाज़, इनों के दिलां में कि हमीं करतियां नाज़ . . . . .

स्वाद समझनहारी औरत कां है, सबगुन में सारी औरत कां है। जो यूं औरत दिल ती खुले तो मर्द क्यों न भुले ? औरतीया दिल में रखे कपट, पिछीं मर्द कू क्यो लगता चट। अदा, हरकत, चालियां ती औरत, मर्द कूं खुश लगती। अपे गले लगना, अपने गुड़ देना, ऐसी मुहब्बत की उलालियाँ ती औरत मर्द कूं खुश लगती। अपस कूं घड़ी-घड़ी संवार मर्द को दिखलाना, अपने दिल में का प्यार मर्द कूं दिखलाना . . . . .

सेज पर संग्राम के वक्त़ काम की औरत ने मर्द की बहुत मिन्नत करना, पांव पर हाथ सटना, अला-बला लेना, सीने सूं सीना चिपकाना, गुड़ देना, खुशबू में तमाम महके रहना, अपने दिल की बात खोल कहना। यो तन सूं तन, दिल सूं दिल मिलने की जगा है, अपन कूं कली करना अछना, यो फूल होकर खिलने की जगा है। मर्द भँवर है फूल का रस लेने आया है, औरत पर आशिक़ हुआ है। दिल की हवस लेने आया है . . . . . जो कोई है चतुर औरत की जात, उसी भाती हेगी यो स्वाद की बात। अगर मुँह पर चुप रहेगी, दिल मे तो शाबाश कहेगी। औरत अगर सुघड़ अच्छी तो मर्द का दिल हात लेना कीता काम है, वले यो छंद किस औरत कूं फ़ाम है . . . . . मर्द कूं मोम का दिल, औरत कूं फौलद का दिल। मोम फ़ौलाद सूं क्या करना बहुत मुश्किल।"

(मर्द औरत)

सौत की ईर्ष्या मशहूर है। वजही ने इसका बड़े सुंदर ढंग से जायज़ा लिया है। उसने सौतिया डाह के मनोविज्ञान का ध्यान रखा है, जैसे :

"सोकन[1] का झल नौज़बिल्लाह[2] जीव जाय निकल इस झल कूं कौन सँभाले, तन सूं रंग-रूप जाले। . . . . . "

जां सोकन होती वहां औरत जरूर कूं बेज़ार मर्द कने सोती। न मन का स्वाद, न तन का स्वाद। सीना जलता दिल में तरफड़ी, सेज में आई है जाकर दोजख़ में पड़ी। . . . .

> "सोकन कूं देखने की किसे ताब, जिस घर मे सोकन आई वो घर ख़राब। सोकन आधे की तक्सीमदार, यो झल कूं सोसे तौबा इस्तिग़फ़ार[3]. . . . . . कौन एकस कने सोता, दिल दुसरी पर होता। एकस कूं क्या प्यार, तो जानो दूसरी को दिया ज़हार (ज़हर)। एकस कूं पान खिलाया, तो दूसरी को जानो आग लाया। एकस कूं फूल पहनाया, तू दूसरी कूं जानो अंगारिया में भाया। एकस सूं बात किया, तो जानो दूसरी के जीव पर घात किया। एक नज़दीक सोती तो दूसरी रोती, मरने पर राज़ी होती, किलकिलाती, तिलमिलाती, कईं का कईं नहीं सौ झगड़ा काढ़ती, दोनों की खुशी में ख़लल डालती, यानी अपी जल-जल कर मरती, सोकन क्यों खुशी करती।"

(सौतिया डाह)

वजही के समाज में माँ-बाप का कितना आदर था, देखिए :

> माँ-बाप मजाज़ी खुदा (सांसारिक भगवान), इनों के हुक्म सूं क्यों होना जुदा . . . . . बड़ा मक्का बडा मदीना सो माँ-बाप, सुबह उठ इनों का मुँह देखे तो झड़ते सब पाप . . . . . माँ-बाप की रज़ा में जाता है सो वो अदबदार, बहुत नेक बर्खुरदार।"

(माँ-बाप)

मुल्ला वजही के सूफ़ी निबंधों के पवित्र किंतु रंगीन वातावरण में भी उनकी लेखनी जादू जगाती है। सूफ़ियों के अनुसार दिल ही वह आईना है जिसमें वास्तविक प्रेमी (मेहबूब) की छवि दिखाई देती है :

> "जेता है इस दो जहां की मंज़िल में, उतना है सब दिल में। वही हुआ आशिक़ होर भुलूया, जिस पर पर्दा खुलूया। दिल में जाने होर दिल को पाने की बात जुदा है, दिल में खुदा है। यही दीदे यहाँ देखते सो दीदे दिल

---

१. सौतन २. ईश्वर रक्षा करे ३. तौबा करना, माफ़ी माँगना।

में जावें, तो दिल का दीदार, दीदार दिल। इश्क़ को खुदा नज़दीक, अक्ल को खुदा बहुत दूर। अक्ल गायब है कर जानती है, इश्क़ जानता है कि हाज़िर हुजूर।"

(दिल)

यही दिल मंज़िले इश्क़ है, अनलहक़[1] की मंज़िल है :

"यो अनलहक का मुक़ाम, आशिक जानता है, आबिद[2] कूं कां फाम . . . . . इस जलने क्या है सो देख! इस तिलमिलाने में क्या है सो देख! वो जलने में है होर जलता नीं, वो तिलमिलाने में है होर तिलमिलाता नीं।"

(अनलहक़)

इश्क़ और इर्फ़ान (प्रेम और ब्रह्म ज्ञान) का संगम भी देखिए :

जो इश्क़ और इर्फ़ान में यारी होती, तो मस्ती इ कूं ऐन होशियारी होती। जहाँ इश्क़ होर इर्फ़ान होते यकवजूद, वहाँ आलम आकर करता सजूद (सजदे)। यो इश्क़ होर इर्फ़ान का विसाल है, अमा महाल दर महाल है, बड़े नसीब उसके जिस पर यो हाल है। इश्क़ में इतना चा मना, मेहरत की बात ना मेहरां कने ना कना।"

(इश्क़ होर इर्फ़ान)

प्रेम और ब्रह्मज्ञान के मिलन-स्थल पर ही अनलहक़ की आवाज गूंजती है :

"अगरचो इश्क़ होर इर्फ़ान का जिक्र एक है, वले हुए दो ठार, आशिक़ मस्त आरिफ़ होशियार . . . . . अना[3] के मुक़ाम बगैर जेते मुक़ाम बगैर जेते मुक़ाम हैं, वो सब हाल है, यो विसाल[4] है। क़ुर्ब[5] का अंदाज़ है, माशूक का नाज़ है। हिम्मत का इम्दाद है, इश्क का इत्तहाद[6] है जो लगन बशीरत[7] इसमें बाक़ी है तो लगन अनल्लाह[8] कहने की मुश्ताक़ी है। बशीरत की धन, अनल्लाह लगन . . . .

पस मालूम होता है कि अना भी मासूक़ियत की कमालियत का मुक़ाम है, जिसको समझ है, जिसको फ़ाम में फ़ाम है, उसे यो फ़ाम है। अनल्लाह व अना का तो लगूया है धंधा, वले जो बशीरत की एहतियाज मियाने मियान आये तो वो खुदा, यो बंदा सो बंदा।"

(अनलहक़)

ज़ात और सिफ़ात (निजता और गुण) की बहस में वजही ज़ात को खुदा और सिफ़ात को बंदा क़रार देता है :

---

१. अहँ ब्रह्मास्मि (मैं ईश्वर हूँ) २. इबादत करनेवाला। ३. अहं ४. मिलन ५. समीपता
६. अद्वैत ७. भविष्यफल ८. मैं ईश्वर हूँ।

"ज़ात, ज़ात से सिफ़ात है, ज़ात से जो कुछ निकल्या सो बी जात है। ज्यूं आफ़ताब होर उसका नूर, अगर आफ़ताबीया न अछे तो नूर क्यों हो मशहूर। सूर कूं नूर कते हैं, नूर है सो सूर कते हैं। नूर ते आफ़ताब है, नईं तो शराब कूँ शराब कौन कता। बास ती फूल ने शर्फ़[1] पाया, बास ती फूल, फूल कहलाया। जोत ती जौहर ने पाया मोल, मानी ती मीठा लगता बोल। ज्यूं हमारा वुजूद है हमारे संगात, त्यूं है यो जात होर सिफ़ात . . . . . सिफ़ात ताबा[2] ज़ात है, ज्यूं हमीं होर हमारा हाथ है . . . . बंदा सो सिफ़ात, खुदा सो ज़ात।"

(ज़ात होर सिफ़ात)

क़तरा और दरिया (बूँद और समुद्र) का प्रसंग भी देखिए :

"इस कत़रे की कौन पाया माया, आसमान ज़मीन इस करते में समाया। क़तरा दरिया ती वासिल[3] हुआ, दरिया क़तरे कूं हासिल हुआ . . . . . अजब क़तरा है वो जिसमें दरिया भरता, कुदरत देख क़तरे कूं दरिया करता।"

(कतरा होर दरिया)

आशिक़ और आबिद (प्रेमी और उपासक) की तुलना :

आशिक़ जो कुछ मयखाने में पाया, सो काबा में जाहिद[4] के हाथ नईं आया। आशिक़ी मुसाहबत होर यारी, इबादत बंदगी होर खिदमतगारी। आशिक़ बुलंद, आबिद पस्त, आबिद दीन ख़ातिर जनम खोया है, आशिक़ खुदा ख़ातिर दीन-दुनिया ती हाथ धोया है। इस बात का कौन पाया खोज, कहाँ गंगू तेली कहाँ राजा भोज।"

(आशिक़ होर आबिद)

साधना के मार्ग की सबसे बड़ी बाधक मन की कुटिलता है :

"अगर तुज में कुछ पहचान है तो तेरा नफ़्सीच (मन) तेरा शैतान है। सीने में शैतान, क्यों आवे रहमान . . . . . .
नऊज़ बिल्लाह अगर यो नफ़्सानी (मानसिक) ख़तरे बाहर निकले, नरड़ी पर पाँव दे गला चुकले। अगर मर्द है तूँ साहब हाल, तो इस नफ़्सानी ख़तराँ कूँ सँभाल।"

(नफ़्स)

---

१. गौरव २. वशीभूत, अधीन ३. विशाल ४. सदुपदेश देनेवाला।

कंगाली साधना और तपस्या में सहायक होती है :

"घर-घर नक्को फिरा आस, अपे होर अपनी भूख-प्यास, जिन्हें भूख-प्यास में बांदिया घर, वो निडर उसे क्या डर, दौलत बेज़वाल[1] सो इसके पास है, मर्दां का धन-माल सो इसके पास है . . . . .

वायु के झाड़ से कोई फल लिया है, भेस छोड़कर कोई साधना किया है। वलियां की मीरास[2]। खाना भूख के निवाले होर पीना प्यास के घूंट, अगर मर्द है तो चल! बाक़ी सब झूठ।"

(फ़क़र अर्थात् कंगाली)

कंगाली से ही धैर्य और संतोष की शिक्षा मिलती है :

"ताजील[3] शैतान का ओलासा, सबूरी[4] रहमान का खासा। यो परत का खेलना है पारद, ज्यूं सादी कहता है —सब्र तल्ख़ अस्त व लेकिन शीरीं[5] दारद . . . . . खुदा कूं यो दो बातां नईं भातियाँ, यो बातां वहीचा जिसमें कुछ गरीबी कुछ सबूरी। जिनने किया बेगी[6], उनने गँवाया, जिनने सबूरी किया, उनने कुछ पाया, बेगी में मक़सूद[7] गंवाया जाता है, सबूरी में हरेक काम निकल कर आता है। अगर आसमान ती आग बरसेगा अब्र[8], वहाँ भी काम करेगा शुक्र होर सब्र . . . . . शुक्र होर सब्र हरेक दर्द का दारू है, शुक्र होर सब्र मेहनत के दरिया का उतारू है। शुक्र होर सब्र ती होश मुश्किल आसान होता है शुक्र होर सब्र करनहारे पर खुदा मेहरबान होता है। जिस पर जो कुछ बला आतीं है, शुक्र होर सब्र करने ती सब जाती है।"

(शुक्र होर सब्र)

दुनिया आख़िरत (कर्मों) की खेती हैं :

निहायत सई इतना करना कि कुछ फ़ैल[9] नेक हाथ आवे, खुदा होर रसूल को भावे, अपनी मुराद पावे, इसका दिल साफ़ी[10] पकड़े, इसके दिल की जावे, बाक़ी सब खैर है, फ़ैल गैर-गैर है . . . . . दुनिया आखिरत की खेती है, इस खेती कूं बहुत मशक्क़त है। जैसे झाड़ यहाँ लावेंगे, वैसे फल यहाँ पावेंगे।"

(दुनिया होर आखिरत)

नेकी ही मुक्ति का मार्ग है :

"नेकी पर चित धर, नेकी नको बिसर . . . . . वक़्त पर एकस कूं काम आना, बहुत बड़ा सवाब, प्यासे को पानी पिलाना बहुत बड़ा सवाब। पड़ें

---

१. अनश्वर, अक्षय २. देन, विरासत ३. जल्दबाजी ४. धैर्य ५. धैर्य कड़वा होता है लेकिन इसका फल मीठा होता है। ६. अहंकार ७. अभीष्ट, जिसे किया जाना हो ८. बादल ९. कर्म १०. शुद्धता

को उठा खड़ा करना बहुत बड़ा धरम है, नन्हें कूं बड़ा करना ऐन करम है . . . . . नेकी सब ठार करती यारी नेकी क़यामत की छुड़ावनहारी।"

(नेकी)

परोक्ष सत्ता में आस्था रखनेवाले मोमिन से भी मिलिए :

मुसलमान वो जो ग़ैब (परोक्ष सत्ता) पर ईमान लियावे, खुदा बेचूं बे चुगूं है (अर्थात् निराकार है) यह खुद को समझावे, अपने दिल कूं समझावे, इसकूं काला नूर कहते हैं, बहुत आला नूर कहते हैं। इस नूर की खबर किसे मालूम नही, मफ़्हूम नहीं, जो कोई मोमिन मुसलमान है, इस बात की दिल शाद है, यो दाना[1] यां कूं इर्शाद[2] है।

(मोमिन)

उदारता (सख़ावत) ही उपासना (इबादत) है :

सब में बड़ी इबादत सो सख़ावत। जिसमें सखावत है उसीच में शुजाअत[3] है। सखावत न अछो कर कोई शुजाअत की बात करे तो गल़त जानना है। शुजाअत सखावत सूं पिछानना है। सूम (कृपण) कूं सखायत की लज़्ज़त नईं मालूम अछता, शुजा[4] हरगिज सूम नईं अछता। . . . . . सखावत बहुत बड़ी बसत है कर जान, सखावत हर दो-जहान का पश्तीवान[5], सखावत में दीन, सखावत में दुनिया, सखावत में ईमान।"

स्वप्न भी एक संसार है :

"हदीस[6] यों आई है, नींद मौत का भाई है . . . . . ख्वाब बहुत बड़ा आलम है, इस आलम में होना महरम-महरम है, यो भी बड़ा घाट है, आरिफ़ों[7] की समझ की बाट है . . . . .

मुए पीछे भी ऐसाच कुछ आलम है, जिनने समझा उसे मरने का क्या गम़ है . . . . . इंसान कूं सूरत है तीन, तहक़ीक़[8] जानना एक अपे रब्बुलआलमीन[9], एक यो ज़ाहिर की सूरत, दूसरी ख़्वाब में की सूरत हर किसी दर (दिख) आती है, तिसरे सूरत इस ख्वाब की सूरत में एक सूरत है वो सूरत किसी ते देखी नहीं जाती।"

(ख़्वाब)

वजही कुतबशाही दरबार का मलिकुश्शुअरा था। दीर्घायु पाने के कारण उसने चार बादशाहों का ज़माना देखा था। इसलिए दरबारी के शिष्टाचार से बखूबी परिचित था। बादशाह के अधिकार और कर्तव्य से संबंधित उसके निबंध इस बात के साक्षी हैं। वह कहता है, मस्त हाथी, बादशाह और शेर इन तीनों से बचना चाहिए :

---

१. बुद्धिमान २. कथन, धर्म गुरु की हिदायत ३. पराक्रम, यश ४. पराक्रमी, यशस्वी ५. मददगार ६. शास्त्र में कही गयी बात ७. ब्रह्मज्ञानी ८. खोज ९. खुदा सारी दुनिया का है।

बादशाहों का दिल जगा जोत है . . . . .
बादशाहों का दिल खुदा के रहने की ठार, यहां शक लाना तौबा इस्तिग़फ़ार[१].
. . . . . यो बादशाहां बहुत बड़े हैं, बहुत बड़ी जगा खड़े हैं, इनो सूं बेअदबी से पेश आना नाबूद[२] की निशानी है, इनो सूं बदनीयती करना मरदूद[३] की निशानी है . . . . . बादशाहां को सई करना वाजिब है, अदल[४] इंसाफ़ पर बादशाहां को शराब पीने का क्या डर ? बादशाहों को अदल इंसाफ़ बग़ैर होर कुद पूछ विचारना होसी, बादशाहों शराब पिया तो गुनाहगार न होसी . . . . .
बादशाहों रोशन दिल हैं, खुदा के खलीफ़े हैं, खुदा सूं मिले हैं . . . . .
ज्यूं शराब का असर त्यूं बादशाह का प्यार, ऐसे प्यार कों क्या ऐतबार, तिल में उतरे तिल में चढ़े, ऐसी जगा होशियार किये हैं बड़े . . . . .
जो आग पर बारा चलता तो सूका और गीला मिल जलाता . . . . .
मस्त हत्ती, बादशाह और बाघ, यो तीनों भी एक जिंस की आग . . . .
ज़ोरावर का प्यार, घड़ी में फिरते नईं बार।"

(बादशाहां)

प्रेमविषयक निबंधों की एक झलक देखिए :

इश्क़ आजिज़ इश्क़ तवाना, इश्क़ दाना इश्क़ दीवाना, इश्क़ अपे रंग में आपी खुलता, इश्क़ अपस पर आपी मुलता, इश्क़ के चाले, कौन सँभाले, इश्क़ चंदर इश्क़ भान, इश्क दीन इश्क़ ईमान, इश्क हाकिम इश्क़ सुल्तान, इश्क़ती रोशन जमीन इश्क़ती रोशन आसमान, इश्क़ ते माशूक ने पकड़ी ज़हूर, इश्क़ रोशन सब में भरपूर, इश्क़ उजाला इश्क़ नूर, इसका हुस्न तेरे दिल का उजाला, इसका इश्क़ तेरे पीने का प्याला . . . . .
इश्क़ मजाज़ी अजब तमाशे की है बाज़ी, जो इश्क मजाज़ी, अपना लिया तो ऐन होता है हक़ीक़ी का का विसाल[५]. . . . . .
इश्क़ मजा ज़ी गाज़ी[६] तीन सूरत, आशिक कूं इन सूरतां का बयान करना है ज़रूरत, एक फूल ते ऐते बास के डोरे छुटे, एक झाड़ को ऐते फांटे फुटे (डालिया फूटीं) . . . . . अव्वल इश्क़ सलामती दोयम इश्क़ हलाकती, सोयम[७] इश्क़ मलामती . . . . . जो कोई अछता है इश्क़ के संग, वही समझता है इश्क़ के रंग।"

(इश्क़)

१. तौबा करना २. नष्ट ३. तिरस्कृत ४. न्याय ५. ईश्वर से मिलन ६. धर्मयोद्धा ७. तीसरा

बेसब्री आशिक़ की सिफ्त, बेताबी आशिक़ की इज़्ज़त, तिलमिलाना आशिक़ का काम, जलना आशिक़ का एहतिराम[1] . . . . . . 'सादी' बोल्या है इश्क़ ऐसी चाल, न सब्र दर दिल आशिक़ न आब दर ग़र्बाल[2]. . . . . . इश्क़ बेताब बेआराम हुए तो खूब, इश्क़ टुक भी बदनाम हुए तो खूब। बदनामी ती इश्क़ में कुछ ना ख़ामी है, यो बदनामी नईं इश्क़ की नेकनामी है, इश्क़ में बदनामी ज्यूं खाने में नमक, ज्यूं दीवे में झमक, ज्यूं महबूब में ठुमक, इश्क़ का यही है निशान विचार, जेता पिन्हां[3] करने जाये उतने हुए आशकार[4], इश्क़ कूं कोई छुपाकर ठार्‌या है, आफ़ताब कूं कोई बगल में मार्‌या है ?"

(इश्क़ जलना है, इश्क़ तड़पना है)

"जिन आशिक़ इश्क़ की आग सूं, इन बजनाग सूं रोशन किया दिल के दीवे की बाती, इस दीवे पर वायु काम नहीं करती, इस दीवे की जोत कधीं नहीं जाती।"

(आशिक़)

"आशिक़ की आँखी का पानी क्या है इश्क़ की खूए, इस पानी ने किया अजब जा मुआ (मृत) सो जीवता (जीवित) हूए, मसीहा का दम इस पानी ते फ़ैज पाता, मसीहा इस पानी ते मूए को जिलाता। पानी के हर क़तरे में फ़ैज़ां[5] हैं अगर काई पिछाने, यो या पानी आबे हयात है अगर कोई जाने . . . . . यो कतरा है बहुत लज़्ज़त भर्‌यां, हर कतरे में सौ-सौ दरिया . . . . .

नौज़ बिल्लाह यो पानी अगर कहर में आवे, दरिया कूं डुबावे,नूह[6] का तूफ़ान, इस पानी का एक कतरा जान . . . . .

यो पानी अगर मेहर की मौज अंचावे, तिल में आलम कूं गुलिस्तान कर दिखावे, फूल को फुलवाड़ी करे, बाड़ को बाड़ी करे, पात को झाड़ करे, कंकर कूं पहाड़ करे, ज़र्रे कूं आफ़ताब करे, आतिश कूं आब करे गदा[7] मूं बदशाह करे, सितारे कूं मेहताब करे।"

(आशिक़ की आँख का पानी)

---

१. सम्मान २. प्रेमी के दिल में धीरज नहीं रहता जिस तरह छलनी में पानी नहीं रह सकता।
३. गुप्त ४. प्रकट ५. कल्याण, लाभ ६. एक पैगंबर ७. भिखारी

"इश्क़ आग है जहाँ जाये वहाँ जाले, इश्क की आग कूं कौन सँभाले,
इश्क़ का जीव हुस्न, इस जीव में लाख-लाख गुन, इश्क़ झाड़ है हुस्न पानी,
हुस्न ती कायम इश्क़ की जिंदगानी . . . . .
इश्क़ हुस्न पर वाला व शैदा[१], इश्क़ हुस्न खातिर हुआ पैदा . . . . .
इसका काम नाज़, इसका नियाज़, यो मुस्तग़नी[२], वो मोहताज,
यो सब शोख़ी वो सब लाज . . . . .
इश्क़ होर हुस्न दोनों जोड़ा, कोई बहुत समझा कोई थोड़ा"

(इश्क़ होर हुस्न)

दर दीदा दोस्त, बादीदा खुद ओस्त[३].

"जो कोई दीदे कूं देख्या, सो दीदा हुआ, हक़ रसीदा[४] हुआ, काम उसका सीधा हुआ, जीव होना हो तो जान कूं देखना, दीन होना हो तो ईमान कूं देखना।"

(अँखियाँ)

दीदार दिल की दौलत है :

"लज़्ज़त सब मोहब्बत होर प्यार में है . . . . . इश्क़ दीदार ती पकड़ता ज़ोर, इश्क़ कूं दीदार ती लज़्ज़त है कुछ होर, दीदार देखे तो दिल में आता प्यार, दीदार देखे तो दिल कूं आता क़रार। आशिक़ जो माँगता अपना पीव, दीदार की खातिर देता जीव, यार में लताफ़त[५] ठारे-ठारे है, वले जो कुछ है दीदार है, दीदार सब खूबी का सिंगार है, दीदार दीदा[६] का आधार है, दीदार सहर[७] मंतर टोना, आशिक़ कूं दीदार होना, जो आशिक़ दिल माशूक़ पर वार्या, आख़िर दीदार दीदार कूं पुकार्या। दीदार दीदे होर दिल का आराम, आशिक़ कूं दीदार से ही लग्या है काम, दीदार में हुस्न जलवा देता है, दिल लेता सो दीदार ही लेता है।"

(दीदार)

मिलन की कटार का घाव असहनीय है :

फ़िराक़[८] के हुए का घाव ज्यूं त्यूं सोसेगा दिल, वले विसाल[९] के खंजर का ज़ख्म सोसना बहुत मुश्किल . . . . .

माशूक गोद में सोती है होर हलाक़ करता फ़िराक़, सीने ते सीना

१. मुग्ध २. बेपरवाह ३. अपने प्रेमी की आँख में व्यक्ति स्वयं को देखता है ४. सत्य के समीप पहुँचना ५. कोमलता, पवित्रता ६. आँखे ७. जादू ८. वियोग ९. मिलन

लगूया है कम नहीं होता इश्तियाक[1], दीदा दीदार में खड़ा है होर आशिक़ अंझो तिलमिलता। माशूक़ आकर बैठी पास, हनोज़[2] आते उसास पर उसास . . . . .
फ़िराक़ का जल्या विसाल सूं आराम पावे, विसाल का जल्या बिचारा किधर जावे ? जो कुछ हलक़ में उलझा उसका इलाज पानी सूं, बिचारे जो पानी ही हलक़ में लगूया उसे कोई काहे सूं उतारे ? फ़िराक़ के जलने कूं सब कोई जानता, विसाल के जलने कूं कौन पिछानता ? . . . . .
किस पानी सूं ख़मीर[3] आशिक़ की खाक़ कि हमफ़िराक में हमविसाल में दोनों जाले हैं हलाक़, न यहाँ आराम न वहाँ आराम, जिस पर यो क़िस्सा गुज़र्‌या उसीचा यो फ़ाम[4], जल भस्म बारे पर उड़े तो आशिक़ हुए।"
(विसाल)

राग की तासीर और शराब का असर भी मुलाहज़ा कीजिए :
"राग में अजब है तासीर, आशिक़ के दिल कूं यूं लगता ज्यूं तीर। बहते पानी कूं खड़ा करे, उड़ते जनावर कूं पाड़े, सयाने कूं दीवाना करे, होशियार कूं मस्त कर पछाड़े।"
(राग)

शराब बादशाह के दरबार का शृंगार है, शराब खुदा के घर की राह बतानेवाली चीज़ है :

"शराब सब कैफ़ां का बादशाह कैफ़ (अर्थात् नशों का सरताज), जहाँ आशिक़ होर माशूक़ अछे वहां शराब न अछी तो बड़ा हैफ़[5]। ज्यूं नमक नईं सो खाना, बेनमक खाने ती आदमी ने क्या स्वाद जाना। ज्यूं जोत नईं सो घर, ज्यूं मिठाई नईं सो शकर, ज्यूं मानी नईं सो बात, ज्यूं सख़ावत[6] नईं सो हाथ, ज्यूं पानी नईं सो हवा, ज्यूं सब्ज़ा[7] नईं सो हवा, ज्यूं हुस्न नईं सो नाज़, काजल नईं सो सिंगार। दीवे में बत्ती नईं सो उजाला क्यों पड़ेगा, शराब में मस्ती नईं वो शराब क्यों चढ़ेगा . . .
शराब मर्कब[8] है मोहब्बत के बाट का, शराब हादी है इस घाट का, शराब आरायशे बज़्में बादशाही, शराब इसरारे ख़िल्वते खाना इलाही . . . . .
नापाकां[9] कने शराब जाता है तो नापाक होता है, पाकां[10] कने जाता है तो पाक होता है। शराब बहुत बुरी बस्त (वस्तु), और कोई सटेगा तो

१. लालसा, उत्कंठा, २. अब भी ३. ओषधियों में पानी डालकर सड़ाया हुआ अरक ४, ज्ञान
५. बुरा, निंदनीय ६. उदारता, दानशीलता ७. पेड़ ८. वाहन, अश्व ९. अपवित्र १०. पवित्र

पत्थर होगा मस्त। बजनाग[1] होना तो यो आग पीना, इस काम कूं फ़ौलाद का होना सीना .....
शराब हुस्न का ज़रीना[2] है, मयख़ाना-ए-इश्क़ का मदीना है। आशिक़ की इबादत हुस्न देखना, राग सुनना, शराब पीना है .....
आशिक़ जो कुछ मयखाने में पाया, सो काबा में जाहिद के हाथ में आया।"
(शराब)

अतएव दखन की पहली मौलिक मस्नवी (कुतब मुश्तरी) का शायर, उर्दू का पहला निबंधकार (सबरस) और पहली साहित्यिक-धार्मिक कृति (ताजुलहक़ायक़) का रचनाकार मुल्ला वजही एक सहृदय, रंगीनमिज़ाज, धर्मवेत्ता तथा वाणी का मर्म जानने वाला उच्च कोटि का साहित्यकार था। वह अनोखी-अनोखी बातें बोलनेवाला, मोतियों की लहरों का दरिया, तमाम मोतियों से भरा, ज्ञान के उपवन में बहार बनकर फूल खिलानेवाला, फ़रहाद की भाँति आज़ाद होकर अपने ज्ञान के कुदाल से पहाड़ों को काटने वाला दिग्गज रचनाकार था। जिसकी किताब 'सबरस' बहुत ही लज़ीज़, आशिक़ों के गले का तावीज़। यह किताब आकाश का ख़ज़ाना है और अर्थ का समुद्र है, इसमें संपूर्ण ज्ञान समाहित है –"जिसकी अजब नज़्म और नस्र है, जानों बहिश्त[3] में का क़स्र[4] है, सतर-सतर पर बरसता है नूर, हरेक बोल है यक हूर।"

जिसका एक-एक शब्द हज़ार पुस्तकों के बराबर है :

गुफ़्ता अम मानी हमा कुआँ
हर्फ़म इसरारे सद हज़ार किताब[5]

जिसकी फ़ारसी शायरी ऐसी है :

गुले ख़ुशरंग नज़्मे खुद बा बज़्मे-दानिश आवर्दम
कि गर्दद चूं रुख़े-ख़ूबां क़ुबूल ख़ातिर हा[6]

अर्थात् मलिकुश्शुअरा मुल्ला असद उल्ला वजही गोलकुंडा का तराशा हुआ 'दकन नूर' हीरा वाक़ई अपने वक़्त का पैग़ंबर था :

मोजज़ा शे'र अस्त-ओ-मा पैग़ंबरे वक़्त ख़ुदीम
काफ़िर अस्त आंकस कि शक आरदबरीं ऐजाज़-ए-मा[7]

---

1. वज्र की भांति कठोर 2. सुनहरी 3. स्वर्ग 4. महल
5. मैंने अपने शे'र में क़ुरान के मानी भर दिये हैं। मेरा एक हर्फ़ हज़ार किताबों के बराबर है।
6. मैं अपनी शायरी का ख़ुशरंग फूल दानिशवरों (विद्वानों) की महफ़िल में ले आया हूँ ताकि वे भी इसकी ख़ुशबू क़ुबूल कर सकें।
7. शायरी एक चमत्कार या अलौकिक कृत्य है और मैं अपने समय का पैग़ंबर हूँ। अगर कोई व्यक्ति इस बात पर शक करता है तो वह काफ़िर है।

आज गोलकुंडा की जगह उसके खँड़हर मिलते हैं। अब इराक़ी तलवारों और हीरों के शहर का कहीं नामो-निशां नहीं, लेकिन मुल्ला वजही की रचनाएँ रहती दुनिया तक हीरों की तरह दमकती रहेंगी :

खंडर ख़मोश है, करता है बात सन्नाटा
खड़ी हैं वक़्त की परछाइयाँ क़तारों में

सहायक पुस्तकें

1. आशोबे दिल (वजही की फ़ारसी ग़ज़लों का दीवान) संपादक : डॉ जावेद वशिष्ट (हस्तलिखित)
2. अहवाले-ओ-नक़्द-ए-वजही; संपादक : मुहम्मद हयात ख़ां स्याल, नज्र संस, लाहौर, दिसंबर १९६७
3. भागमती का अफ़साना (आलेख), प्रो. हारून ख़ां शेरवानी, हैदराबाद, १९५८.
4. ताजुल हक़ायक़ : डॉ. नूरुल सईद अख़्तर, अल्वी बुक डिपो, मुहम्मद अली रोड, बम्बई, १९७०
5. दकनी कल्चर : प्रो. हारून ख़ां शेरवानी, उर्दू विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, दिसंबर १९७१
6. रूपरस (मुहम्मद क़ुली की रूमानी शायरी का संग्रह), सं. जावेद वशिष्ट, बुक सर्विस, देहली, १९७१
7. सबरस, संपादक : मौलवी अब्दुल हक़, द्वितीय संस्करण, अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू पाकिस्तान, कराची, १९२०-२१
8. सबरस पर एक नज़र : डॉ. सुहेल बुख़ारी, आज़ाद बुक डिपो, उर्दू बाज़ार, लाहौर, मई १९६७
9. सबरस का तन्क़ीदी जायज़ा : डॉ. मंज़र आज़मी, अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू (हिंद) नई दिल्ली (प्रकाशन वर्ष लिखा नहीं)
10. अलीगढ़ तारीख़-ए-अदब-ए-उर्दू, प्रथम भाग, उर्दू विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय , अलीगढ़, १९६६
11. ग़ज़ाल राना (मुहम्मद क़ुली की ग़ज़लों का संग्रह), संपादक : जावेद वशिष्ट, किताब भवन, दिल्ली, १९७४
12. क़ुतबशाही दौर का फ़ारसी अदब : अख़्तर हुसैन, अबुल कलाम आज़ाद ओरियंटल रिसर्च इंस्टीच्यूट, हैदराबाद, १९७३
13. क़ुतब मुश्तरी, संपादक : मौलवी अब्दुल हक़, अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू (हिंद), दिल्ली, १९३९
14. मेहबूबुल्ज़मन (तज़्किरा शुअरा-ए-दकन), पहला और दूसरा भाग, संकलनकर्ता: मौलवी अबू तुराब मुहम्मद अब्दुल जब्बार ख़ां सूफ़ी मल्कापुरी, हैदराबाद, १९३०
15. मुल्ला वजही के इंशाइए : जावेद वशिष्ट, बुक सर्विस, दिल्ली, १९७२